मेरी आत्मकथा

मेरी आत्मकथा

दारा सिंह

दो शब्द

अपनी जिन्दगी पर किताब लिखने की कोशिश की, इसका कारण मेरे कुछ मित्र और प्रशंसक हैं जो मुझे कई बार कह चुके हैं कि मुझे अपनी आत्मकथा जरूर लिखनी चाहिए। इनका ख्याल है कि मेरी आत्मकथा पढ़कर हमारे देश के नौजवानों की जिन्दगी में आगे बढ़कर काम करने और स्वास्थ्य को बनाए रखने की प्रेरणा और उत्साह मिलेगा। इसके अलावा उन गलतफहमियों का खुलासा भी हो जाएगा जो लोगों ने मेरे बारे में कायम कर रखी हैं।

सामान्यतः नौजवान मेरे और अपने बारे में विचार करते समय यह सोचते हैं कि इनती मेहनत-मशक्कत कर ही नहीं सकते, साथ ही भगवान उन पर कभी इतना मेहरबान नहीं हो सकता कि वे 'सुपरमैन' बन जाएँ। इसीलिए वे पहलवानी को नहीं अपनाते, बल्कि दिल ही दिल में कई तरह के डर बिठा लेते हैं।

मैं अपनी आत्मकथा के जरिए अपने जीवन का सच इसलिए जगजाहिर कर रहा हूँ ताकि नौजवान यह जान सकें कि ऐसा कोई काम नहीं, जिसे एक इन्सानी बच्चा न कर सके। हां कोई भी काम करने के लिए लगन, मेहनत और अपने आप पर दृढ़विश्वास की पूंजी अपने पास होनी चाहिए।

दारा सिंह

मेरी किताब के बारे में

मैंने अपनी जिन्दगी की कहानी पंजाबी भाषा में लिखी। उसे पाठकों और पंजाबी भाषा के साहित्यकारों ने बहुत सराहा। पंजाबी भाषा पढ़ना जिनके लिए सम्भव नहीं था, ऐसे कुछ लोगों ने किताब के बारे में सुनने के बाद यह माँग की कि मेरी आत्मकथा हिन्दी में भी प्रकाशित होनी चाहिए। और तो और, मेरे अपने बच्चे जो मुम्बई में पैदा हुए, यहीं पले, बड़े, पढ़े, वे भी पंजाबी लिपि से नाबाकिफ हैं।

इनकी सुविधा के लिए मैं इसे स्वयं भी हिन्दी में लिख सकता था, लेकिन हिन्दी पर मेरा भी ऐसा अधिकार नहीं है जैसा एक किताब को लिखने वाले का होना चाहिए। जो बात मैं पंजाबी ने सरलता से कह सकता हूँ उसे उसी सरलता से हिन्दी में कहना मेरे लिए कठिन है। हालांकि ऐसे बहुत से शब्द हैं जो पंजाबी जैसे ही हिन्दी में भी प्रचलित हैं। यहां तक तमिल, मलयालम, गुजराती और मराठी में भी पाए जाते हैं। मुझे लगता है ये शब्द संस्कृत भाषा से सब भाषाओं में पहुँचे हैं।

आज हाल यह है कि शहरी पंजाबी भी गांव की पंजाबी भाषा को ठीक-ठीक नहीं समझ पाता, ऐसे में ओरों की तो बात ही क्या करनी। खैर, मैंने अपनी किताब के अनुवाद के लिए लेखकों से सम्पर्क किया। इस दौरान मेरी मुलाकात श्रीमती सन्तोष साहनी से हुई। उन्होंने मेरी आत्मकथा का पंजाबी से हिन्दी अनुवाद किया इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। उक्त अनुवाद को श्रीमती मंजु सूदन ने सम्पादित किया। मैं उनका धन्यावाद करता हूँ। भाई महावीर प्रसाद जैन ने पुनः इस पर कार्य करके इसमें मेरी अपनी भाषा की आत्मा को सुरक्षित बनाए रखते हुए हिन्दी भाषा-भाषी पाठकों के लिए पठनीय बनाने का जो श्रमसाध्य कर दिखाया है, उसके लिए मैं उनका चिरऋणि रहूँगा। उम्मीद है पाठकों को मेरे जीवन की यह कथा पसन्द आएगी।

दारा सिंह

मेरा गांव और मेरे बड़े-बूढ़े

मेरा गांव धरमूचक्क अमृतसर शहर से बाइस मील दूर है। यह गांव अमृतसर से हरगोबिन्दपुर जाने वाली सड़क पर स्थित है। मुख्य सड़क से उतरकर गाँव जाने के लिए दो मील का एक पक्का टुकड़ा बना हुआ है। यह बात अलग है कि उसमें इतने गड्ढे हो चुके हैं कि उसे आप अब न कच्चा रास्ता कह सकते हैं और ना ही पक्की सड़क। इस छोटी-सी सड़क को बनाने की भी एक अलग कहानी है, जो आपको आगे चलकर बताऊंगा। पहले पूर्वजों का-वर्णन कर लें।

इस गांव को बसे लगभग पांच सौ वर्ष हो गये होंगे। हमारा एक पूर्वज, जिसका नाम धरमू था, यहां से दो एक मील दूर एक गांव कुहाटविंड से यहां आया और अपना एक अलग गांव बसा लिया। यह कह लो घर वालों ने झगड़ा कर दिया होगा। उस जमाने में भी तो सास-बहू का झगड़ा होता ही होगा! खैर, कारण जो भी रहे हों, पर धरमू ने अपना गांव बसाकर नाम रख दिया धरमूचक्क!

मैं इस गांव को पांच सौ साल पुराना इसलिए लिख रहा हूँ कि हमारे गोत्र के, यानी रंधावों के इस इलाके में कई गांव थें। इसी इलाके के बाबा बूढ़ा रंधावा पशुओं को चराते हुए गुरु नानकदेव जी को मिला था और गुरु जी का सेवक बनकर बहुत जन-सेवा की। इस तरह रंधावों के कुल का नाम इतिहास में सुनहरे अक्षरों में अंकित करवाया। गुरु नानकदेव जी और बाबा बूढ़े का मिलना उन दिनों हुआ, जब धरमू ने धरमूचक्क और उसके दूसरे भाईयों ने और कई गांव बसा लिये थे—चन्ननके, भोलेवाला, सैदपुर आदि। दूसरी बात, पांच सौ वर्ष पुराने गांव की शहादत है धरमू रंधावे की औलाद, जो सत्रह-अठारह पीढ़ियों से गांव धरमूचक्क में डेरे डाले हुए है। मैं धरमू रंधावे के परिवार की सारी पीढ़ियों का विस्तार से वर्णन करूंगा तो इस किताब के पन्नों से वह वर्णन बाहर हो जाएगा। केवल एक लड़ी को पिरोता हुआ अपने जन्मदिन तक आता हूँ।

धरमू का बेटा चढ़त और चढ़त का खोखर, खोखर का बेटा पठान और पठान का सांदराण, सांदराण का ढींगा और ढींगे का नंदा, नंदे का बेटा गुरदास, गुरदास का पलात का देवा, देवे का बेटा दसौंदा सिंह और दसौंदा सिंह का उत्तम सिंह, उत्तम सिंह और रूपा सिंह और रूपा सिंह का गुरदित्त सिंह, गुरदित्त सिंह का बूड़ सिंह, बूड़ सिंह का सूरत सिंह और सूरत सिंह का दारा सिंह यानी कि मैं स्वंय।

मैं और रंधावा यानी सरदारा सिंह रंधावा और मैं दारा सिंह रंधावा, पिता सूरत सिंह के घर तब जन्मे जब परिवार के पास जमीन न के बराबर थी। पांच सौ सालों मे धरमू का परिवार इतना बढ़ गया कि घर से अलग हो-होकर गांव में कई और घर बन गये। दूर या पास जाकर उन पिताओं के बेटों ने कोई और गांव बसाने की कोशिश नहीं की। और तो और हमारे परदादे रूपा सिंह ने दूसरे गांव के रिश्तेदारों से लड़कर कुछ पट्टे अपने नाम से हटाकर उनके नाम कर दिये। कहते हैं दूसरे गांव वालों ने लगान भरने के दुख से अपनी जमीन हमारे पूर्वजों के नाम लिखवा दी थी। उन्होंने सोचा था कि यह घर जरा ठीक है। लगान भर देगा। जब लगान वसूली वाले, हर वर्ष की भांति लगाने लेने आये तो सबके नाम पुकारे गये और लगान वसूल किया, तो हमारे पूर्वजों ने शोर मचा दिया कि हर साल तो हम इतना लगान देते हैं, इस बार हमारा लगान ज्यादा क्यों? इस पर लगान वसूल करने वालों ने बताया कि आपके नाम पर जमीन बढ़ गई है। गाँव के साथ लगती जमीन आपके नाम बोल रही है, इसलिए लगान ज्यादा लगा है। इस तरह बेचारों को लगान तो देना ही पड़ा, पर अगला साल आने से पहले लड़-झगड़कर जमीन अपने नाम से हटाई। यह थे उस जमाने में जमीनों के हाल। इसके कुछ साल बाद, सुना है, हमारे साथ वाले गांव जलाल उस्मान के एक व्यक्ति के साथ, गांव वालों की गांव की हद को लेकर लड़ाई हो गयी, क्योंकि लोगों को जमीन की कमी महसूस होने लगी थी। पर हम गाँव वालों को धर्म पर बड़ा विश्वास रहता है। उन्होंने गर्व से कहा कि भई, अगर यह कहता है कि ये खेत इसके हैं, तो गाय की सौगन्ध खाकर जहाँ से भी यह निकल जाए, गाँव की सीमा वही बन जाएगी। उस जाट के बेटे ने आव देखा न ताव, सौगन्ध उठाकर भागा धरमूचक्क की तरफ। कहते हैं कोई बूढ़ी गांव के पिछवाड़े बैठी थी, उसने एक ईंट उठाकर उसे मारी तो जाट पीछे मुड़ा, नहीं तो उसने धरमूचक्क वालों के लिए जंगल-पानी जाने के लिए भी जमीन नहीं छोड़नी थी।

जमीन की कमी के कारण हमारे दादा बूढ़ सिंह ने, पास के गांव में जाकर जमीन खरीदी। दादा, चार भाई थे - लाल सिंह, बग्गा सिंह, मल्लासिंह और बूढ़

सिंह। ये रोज धरमूचक्क के इस गांव में जमीन जोतने जाते थे और पशुओं के लिए चारा आदि भी इतनी दूर से सिर पर उठाकर लाते थे। एक सौ बीस बीघा जमीन, जो इन्होंने एक सौ बीस रुपये देकर खरीदी थी और उसकी कमाई से कई वर्ष अपने परिवार का पालन-पोषण किया था। जब कागजों के रुपये बनने शुरू हो गये और रुपये की कमीत घट गयी, तो इस गांव वालों ने किसी से छह बीघा जमीन पर एक सौ बीस रुपये लेकर हमारे बुजुर्गों के हाथों में रखे और जमीन वापस ले ली। इस पर हमारे बुजुर्गों की बैलों की जोड़ियां, जो दोनों-तीनों गांवो में धूम मचाये हुए थी और उनके घुँघरुओं की आवाजें जो रात या सुबह लोग सुनते थे, हमेशा के लिए खामोश हो गयी, क्योंकि गांव की जमीन बँटती-बँटती इतनी घट गयी कि हमारे दादा के हिस्से में केवल पांच बीघे जमीन आयी और आये पांच बेटे। उस जमाने में सीमित परिवार का नारा भी किसी ने नहीं लगाया था। अँग्रेज सरकार तो ज्यादा बच्चे पैदा करने वालों को ईनाम देती थी। सब लोग जैसे तैसे गुजारा करने लगे। इन दिनों में उनको अपने दादा रूपा सिंह की जमीन लड़कर अपने नाम से बेदखल करने वाली बात बहुत दुख दे रही थी। जिस तरह दादा का हाल था, उसी तरह उसके रिश्तेदारों का था। कई लोग कमाने के लिए गांव से बाहर हाथ-पांव मारने लगे थे।

गांव के दूसरे धड़े के कुछ लोग, जो धरमू के छोटे पौत्र की सन्तान थे, हाँगकाँग वगैरा धन कमाने चले गये। हमारे धड़े के दो भाई भी उनके पास पहुँचे, पर सुना है परदेश जाकर इतने उदास हुए कि बीमार पड़ गये। उनके साथियों ने कहा कि भाई तुम लोग वापस अपने देश चले जाओ तो दोनों भाईयों ने कहा कि हमें आप अगर बटारी स्टेशन तक छोड़ दें तो हम गांव पहुँच जाएंगे। उनकी यह भोली और सीधी-सादी बात गांव वालों के लिए बहुत समय तक उपहास का कारण बनी रही। पर उन बेचारों को बटारी स्टेशन, जो धरमूचक्क के केवल सात-आठ मील की दूरी पर है, से आगे का रास्ता पता नहीं था, तो वे करते भी क्या? उनके लिए तो बटारी से आगे चाहे हाँगकाँग हो या सिंगापुर, चाहे लन्दन हो या दिल्ली सारे ही परदेश थे। गांववालों ने कोई हिन्दुस्तान आने वाला ढूँढ़ा, जो बेचारों को साथ लाया और उन्होंने गांव पहुँचकर चैन का सांस लिया और कानों को हाथ लगाया कि अब बाहर नहीं जाना।

अंग्रेजी राज में लोग शहर जाने के लिए रेल का सहारा लेते थे और रेलवे स्टेशनों के आसपास बसे लोग-गांव अपने आपको बड़े तीसमार खां समझते थे। मुझे इस बात का ज्ञान इसलिए है कि मेरी माँ का या कहिए मेरे नाना का घर बटारी स्टेशन

से अगले गांव रतनगढ़ में था और जब कभी बचपन में रेल की पटरी पार करके रतनगढ़ जाते थे तो ऊँचे-ऊँचे बिजली के खम्भे देखकर हैरान रह जाते थे और मन में ख्याल आता था कि यहां रहने वाले लोगों के तो बड़े मजे हैं। देखने को नये-नये नजारे और चढ़ने को रेलगाड़ी। कई बार रेलगाड़ी को देखने के लिए पटरी पर ही बैठ जाना, रेलगाड़ी देख कर खुशी जो होती थी। अगर कभी-कभार उड़ता हुआ हवाई जहाज ऊपर से गुजर जाता तो सारा गांव इकट्ठा हो जाता। कोई कहता कि यह देखने में यहां से छोटा लगता है, पर यह है गड्ढे जितना बड़ा। अगर बहस बढ़ जाती तो फौजी चाचे के पास जाकर, पूछकर तसल्ली होती कि वाकई यह चीज गड्ढे जितनी बड़ी होती है। यह बात मैं बहुत पुराने समय की नहीं, अपने बचपन के समय की बता रहा हूँ। मेरा जन्म 19 नवम्बर 1928 का है। इस तरह यह बात 1933 या 34 की होगी। हवाई जहाज देखना गांव वालों के लिए बहुत बड़ा अचम्भा था। पर मैं तो बात कर रहा था अपने बड़े-बूढ़ों की। बाबा बूढ़ सिंह के पांचों पुत्रों में मेरे पिता सूरत सिंह सबसे बड़े थे। कमाई कम होने के कारण उस जमाने में बहुत से लोग कुंवारे ही रह जाते थे। इसीलिए तो छड़ों (कुंवारों) के लोक गीत बने हुए हैं। खैर, हमारे बाबे को चिन्ता हुई कि कहीं मेरे लड़के कुंवारे न रह जाएं। जैसे तैसे हमारे पिता का रिश्ता हो गया क्योंकि अच्छे दिनों में हमारी माँ की बुआ, हमारे बाबे के बड़े भाई बंगा सिंह के घर ब्याही हुई थी। हमारे नाना का घर जरा खुशहाल था, जमीन ज्यादा थी। ब्याह पर थोड़ा बहुत खर्च करना पड़ता था। इसलिए ब्याह के लिए साहूकार से कर्ज लिया गया। खैर, ब्याह तो बापू का हो गया बड़ी शान के साथ पर कर्ज की चिन्ता लग गयी। सभी भाईयों में बड़ा होने के कारण जिम्मेदारी भी हो गयी कर्ज उतारने की। आखिर बात ऐसे हुई कि खेती बाड़ी से कर्ज उतरेगा नहीं, क्यों न बाहर जाकर किस्मत आजमाई जाए!

पिता के नाना परिवार का एक रिश्तेदार सिंगापुर रहता था। उससे सिफारिश करके पिता को धन कमाने के लिए सिंगापुर भेज दिया गया। वहां जाकर कई काम किये। वेतन आदि का तो पता नहीं, वह तो रिश्तेदार ही जाने, ये बेचारे तो काम करते रहे। आखिर दुखी होकर बाबा ने पिता को वापस बुला लिया। खेती बाड़ी का काम भी न हुआ और नौकरी से भी कुछ न मिला। गांव आकर चिन्ता ज्यों की त्यों ही रही, बल्कि जो बात सगे-सम्बन्धियों से छुपाकर की थी, वह भी सबको पता चल गई कि जमीन रखकर कर्ज ले रखा है। आखिरकार माँ के गहने बेचकर साहूकार का कर्ज चुकाया गया। ख़ैर, जो हुआ सो हुआ, पिताजी की चिन्ता तो दूर हुई। वह फिर सिंगापुर चले गये, साथ ही अपने छोटे भाईयों को भी ले गये।

पिता और उनके तीन छोटे भाई सिंगापुर चले गये तथा एक भाई फौज में भर्ती हो गया। खेती बाड़ी के लिए अकेला बाबा ही काफी था। क्योंकि जब धरमू ने गाँव बसाया था तो गाँव की जमीन थी नौ सौ बीघे, जब हमारे परदादा की सन्तानों ने जमकर इस रंगीली दुनिया को चार चाँद लगाये तो जमीन घटती-घटती हर घर के पास पांच या दस बीघे की रह गयी। फिर बेचारे धरमूचक्क वाले गांव छोड़-छोड़ दूर-दराज जाकर बसने लगे। जिस तरह एक कहावत है—आवश्यकता आविष्कार की जननी है, इस तरह सभी ने अपने सुखी जीवन के लिए कोई न कोई साधन ढूँढ़ लिया तथा धरमूचक्क में मनीआर्डर आने लगे।

मेरा जन्म

मेरा जन्म 19 नवम्बर 1928 का है या 17 नवम्बर 1928 का इसका फैसला अभी तक नहीं हो सका है, क्योंकि अमृतसर रजिस्ट्रार के रजिस्टर में लिखा है 17-11-1928 और एक ज्योतिषी-पण्डित के पास माँ ने संवत विक्रमी बताकर और यह बताकर कि दिन इतवार का था, कि तड़के के सूरज की लाली ऊपर आ रही थी जब मेरा जन्म हुआ। मेरे जन्म की तिथि पूछी तो पंडित ने 19 नवम्बर बतायी।

यह सारी गड़बड़ इसलिए हुई क्योंकि जब मैं हिन्दुस्तान का, कुश्तियों का चैंपियन बन गया, तो अखबार वालों ने पूछा कि पहलवान तेरी उम्र कितनी है? मैंने उन्हें अन्दाजन उम्र बतायी तो उन्होंने मेरा मजाक-उड़ाया। मैंने उसी दिन यह बात गाँठ बाँध ली कि एक बार सही उम्र का पता जरूर करना है, क्योंकि पासपोर्ट बनवाते समय भी मेरी उम्र अन्दाजन ही बताई गयी थी। जिसने फार्म भरा था, वह आदमी पढ़ा-लिखा था, कहने लगा अगर अन्दाजे से उम्र बताओगे तो पासपोर्ट नहीं बनेगा। मैंने विवशता जाहिर की कि जब मुझे सही उम्र का पता ही नहीं तो मैं क्या करूँ? उसने कहा कि 18 साल से ऊपर उम्र होगी तभी पासपोर्ट बनेगा, तुम कहते हो कि मेरी उम्र 18-19 साल है। सो अपन कम से कम 20 साल लिखेंगे तो बेहतर रहेगा।

मैंने कहा कि यह तो झूठ बोलना हुआ। उसने कहा कि तुम्हें झूठ जुबानी नहीं बोलना पड़ेगा। मैं फार्म भर देता हूँ, तुम दस्तखत कर दो। पासपोर्ट बनकर अपने घर आ जाएगा। मैंने सुख का सांस लिया और फार्म पर दस्तखत कर दिये।

यह उपरोक्त किस्सा सिंगापुर में बड़े गुरुद्वारे में बैठे हुआ था। सन् 1947 में, जब हिन्दुस्तान आजाद हुआ तो मुझे सिंगापुर आये करीब एक महीना हुआ था। सन् 1948 में सिंगापुर में ऐलान हुआ कि सभी हिन्दवासी पासपोर्ट बनवा लो ताकि आपको वापस अपने देश जाने में कोई दिक्कत पेश न आए, क्योंकि

पहले तो हम मद्रास शहर से एक परमिट लेकर सिंगापुर पहुँच गये थे। पासपोर्ट की कोई जरूरत ही नहीं थी क्योंकि सिंगापुर और हिन्दुस्तान दोनों देशों पर अंग्रेजों की हुकूमत थी।

जिस दिन भारत सरकार के बनाये पासपोर्ट लोगों को मिले, खुशियाँ ही खुशियाँ छा गयी, मानो लोगों का नया जन्म हुआ हो। कुछ लोग तो अपनी जेबों में पासपोर्ट डाले कई-कई दिन घूमते रहे। मुझे आजादी और गुलामी की तब तक ज्यादा जानकारी नहीं थी, पर पासमोर्ट मिलने की खुशी इसलिए अधिक हुई कि अब जगर मैं घर यानी हिन्दुस्तान जाना चाहूंगा तो कोई रुकावट नहीं आएगी।

उस पासपोर्ट का फायदा मुझे अगले ही साल हो गया जब अचानक मुझे कुश्ती लड़ने इंडोनेशिया जाना पड़ा। वह कार्यक्रम इतना अचानक बना कि अगर मेरे पास पासपोर्ट न होता तथा नया बनाने में इतना समय लगना था कि मैं 'बतावी' तथा 'बांडूप' जैसे शहर नहीं देख पाता।

कुश्तियों के सिलसिले में कांट्रैक्ट साइन करने का मेरा यह पहला मौका था। मैंने कांट्रैक्ट पर पंजाबी में दस्तखत किये जबकि कांट्रैक्ट अंग्रेजी में लिखा हुआ था। मुझे जो बताया गया, उस पर विश्वास करके मैंने दस्तखत तो कर दिये, पर मन में ठान लिया कि इतनी अंग्रेजी जरूर सीखनी है कि कांट्रैक्ट आदि पढ़ना आ जाए।

मैं और मेरे गुरु हरनाम सिंह कुश्तियों के लिए इंडोनेशिया गये थे, तो उस जमाने का सिंगापुर का मशहूर बॉक्सर जगरी सिंह भी हमारे साथ ही बॉक्सिंग करने गया था। हम तीनों एक ही होटल में ठहरे थे। सुबह की कसरत के बाद मैं नियम से अंग्रेजी पढ़ने बैठ जाता था। गुरमुखी में लिखे अंग्रेजी के कायदे से मैं जल्दी ही ए बी सी से जेड़ तक पहुँच गया। इसके बाद सिंगापुर से ठेकेदार की अंग्रेजी में चिट्ठी आयी। चिट्ठी का मतलब तो मुझे जगरी सिंह ने समझा दिया, पर दिल को तसल्ली बिल्कुल न हुई। वह पत्र मैंने अपने पास तब तक रखा जब तक मैं स्वयं थोड़ी-बहुत अंग्रेजी लिखना-पढ़ना न सीख गया। मेरे गुरुजी को तो पंजाबी भी लिखनी-पढ़नी नहीं आती थी तो उनके पत्र पढ़ने और लिखने मुझे ही पड़ते थे। मेरी अंग्रेजी-पढ़ाई का वह बहुत मजाक उड़ाते थे पढ़कर इसने कौन-सा जेलदार बनना है। मैंने कहना, गुरुजी, मुहावरा तो पटवारी का है और आपने जेलदार बना दिया। वह कहते, तूने मुझे जड़ी-बूटियों के साथ मिला दिया। मैं तो अमरीका और अफ्रीका भी घूम आया हूँ। कभी-कभी गुरुजी अपने एक अन्य शिष्य सौदगार सिंह से मजाक करते थे—आखिर इन धूतियों ने कौन-सी दुनिया देखी...

सौदागर सिंह चाहे उनका शिष्य था, पर कभी-कभी दोस्तों वाला सलूक कर लिया करता था। माझे वालों को खब्बल कहना और मलवाइयों की तारीफ करनी उसका रोज का शौक था। धूते और खब्बल शब्द सिंगापुर में रहने वाले पंजाबी लोगों के लिए नये नहीं थे, पर दूसरों को शायद समझने में दिक्कत आए, इसलिए इनका खुलासा करना जरूरी है। खब्बल और धूते दोनों का ही मतलब बेवकूफ है। माझे वालों को मालवे वाले बड़े प्यार से खब्बल कहते थे और माझे वाले भी बड़े सत्कार से मलवाइयों को धूते कहते थे। सबका एक सांझा गुरुद्वारा है जिसे बड़ा गुरुद्वारा कहते हैं तथा इन लोगों ने अलग-अलग भी गुरुद्वारे बनाये हुए थे। देखा देखी दुआबियों (दुआबा वाले) ने भी अपना गुरुद्वारा बना लिया।

मैं आपको सिंगापुर का हाल पहले ही बताने लगा, यह तो आगे चलकर बताना ही है, पहले जन्म की बात कर लें। दोनों तारीखों में कोई सी भी सही हो, सही तिथि निश्चित कर ली जाएगी (पर सौ हाथ रस्सा और सिरे पर गाँठ) सही बात तो यह है कि हम जन्मे जरूर थे और सुना है कि घरवालों ने बड़ी खुशियों भी मनायी थी। मेरे ननिहाल वालों को रिवाज से बढ़कर खर्च करना पड़ा। कपड़े-लत्तों के अलावा मेरे मामाओं ने मेरे कानों में नत्तियां (बालियां) पहनाई, जिनके निशान अभी तक मौजूद हैं। कानों में औरतों की तरह आदमी भी कुछ न कुछ पहनते थे। यह रिवाज कबीलों के जमाने से देश की आजादी तक आया था। पर आजकल पढ़े-लिखों ने तो इसका नामोनिशान मिटा दिया है। अब तो कभी-कभार यह शौक फिल्म अभिनेता फिल्मों में पूरा करते हैं। ख़ैर मेरी माँ का कहना हे कि नत्तियों के पहनने से मेरे कान सूज गये और मैं रोने से चुप ही न होऊं।

एक रात को मैं इतना रोया कि मेरे बापू ने मेरी माँ से कहा, 'इसे बाहर परनाले के नीचे फेंक दे।'

बाहर बारिश का शोर तो अन्दर मेरे रोने का। बापू बेचारा दुखी हो गया होगा। बहुत दिन बाद ननिहाल वालों की सहमति से मेरे कानों की नत्तियाँ उतारी गयीं तो मैंने घरवालों को सुख की नींद सोने दिया।

गाँवो में बच्चों के नाम रजिस्ट्रार के पास दर्ज कराने की ड्यूटी रपटों की होती है। हमारे गाँव का रपटा था—बरवाला। जब तक दस-बारह बच्चों के जन्म की खबर न मिल जाती, इतनी देर वह नाम दर्ज कराने के लिए शहर नहीं जाता था। लड़कों के नाम तो वे जैसे तैसे, देर सबेर लिखवा ही आता था, पर बेचारी लड़कियों के नाम तो उसने 'काकी' ही रख दिये थे। रजिस्टर देखते समय हमने और गांव वालों के नामों पर नजर डाली तो पता लगा बाबे बरवाले की जिम्मेदारी का।

मेरा बचपन

जहां तक मुझे होश है उम्र का अन्दाज लगाना मुश्किल है, पर तीन चार साल का हेरफेर कह लो। गाँव के हमउम्रों के साथ मिट्टी में खेलने का मुझे बड़ा शौक था। नंग धड़ंग - सारे शरीर पर कच्छे के आलवा और कुछ नहीं। मैं अपने हम उम्रों के साथ गांव के पिछवाड़े खेल रहा था कि मेरा मामा रूड़ सिंह अक्सर लोहड़ी वगैरा या दूसरे त्यौहारों पर गांव आता था, वापस रतनगढ़ को जा रहा था। मैंने जब मामे की लाल घोड़ी पास से जाती देखी तो मैं मामा के पीछे दौड़ पडा। पहले तो मामा ने मना किया, पर फिर मेरी हालत पर तरस खाकर, उठाकर घोड़ी पर चढ़ा लिया। उसी तरह नंग धड़ंग को रतनगढ़ ले गया और मेरे हम उम्रों से कहा, 'ओए छोकरो, घर जा के कह देना कि मैं दारे को अपने गाँव ले जा रहा हूँ। कभी वे इसे ढूँढ़ते फिरें।

मेरे लिए घोड़ी पर चढ़ना बड़ी खुशी की बात थी। जब मामा घर पहुँचा तो मामी बोली, 'बच्चे को लाना था तो कपड़े पहनाकर तो लाते!' मामा ने मुझे उसी समय पीठ पर चढ़ाया और गाँव में एक कपड़े की दुकान पर ले गया। दूकान पर दर्जी भी था। मामा ने कहा, 'ओ शाह जी, जरा लड़के के लिए एक झग्गा (कमीज) बना दो।'

दुकानवाले पण्डित ने पूछा, 'भई रूड़ सिंह, यह किसका लड़का है?'

मामा ने बताया, 'मेरी बहन नंती का। जिद करके मेरे साथ आ गया।'

मुझे नाप लेने के लिए पंडित ने खड़ा किया। मेरे माथे की रेखा देखी। नाप लेकर मेरा हाथ देखा और मामा से कहा, 'भई रूड़ सिंह, यह बच्चा तो बड़े नीसबों वाला है। तूने आज इसके नंगेपन को ढंका है, वक्त आने पर यह बहुतों के नंगेपन को ढंकेगा।'

मामा ने मुझे कलेजे से लगाया और कहा, 'मैं जब भी इसकी भोली-भाली सूरत देखता हूँ तो प्यार करने का जी कर आता है।' यह लिखा-कहा एक दिन मैंने एक अखबार में पढ़ा तो हैरान रह गया।

मेरे फिल्म अभिनेता बनने के बाद एक बार मेरा मामा रूड़ सिंह मुझसे मिलने मुम्बई आया तो किसी पत्रिका के रिपोर्टर ने उनसे भेंट की। मेरे बचपन के बारे में पूछी गयी बातों में ऊपर वाली बात जब मैंने पढ़ी तो पूरा नक्शा मेरे जेहन में उभर आया। मैं अभी भी अपने आपको उस पंडित की दुकान पर कच्छे में खड़ा महसूस कर सकता हूँ, पर बहुत याद करने पर भी पंडित की शक्ल याद नहीं आ रही, हालांकि मेरा बचपन अधिकतर ननिहाल में ही गुजरा है। उस कमीज सिलवाने के किस्से के बाद भी मैं कई बार उस पंडित जी से मिला था। वह बड़े चाव के साथ मेरा हालचाल पूछता था। ननिहाल के गांव में ज्यादा और अपने गांव में मेरा बचपन कम बीता।

पिता के सिंगापुर ज्यादा रहने के कारण भी शायद ऐसा हुआ हो। जब उन्होंने विशेष तौर पर पत्र लिखकर अपनी इच्छा जाहिर की कि लड़के को स्कूल पढ़ने भेजो, तो मैं स्थायी तौर पर अपने गांव में रहने लगा। पढने का मुझे बेहउ शौंक था। हमारे पास वाले गांव जलाल उस्मान में स्कूल था। स्कूल का मास्टर था—मनसा राम। बहुत जल्दी मैं मास्टर मनसा राम का चहेता बन गया और अपनी पहली क्लास का मानीटर भी मुझे बनाया गया। मेरे हम उम्र, जो मुझसे पहले उस स्कूल में आए थे, ईर्ष्या भी करने लगे, पर मैं उन्हें कुछ नहीं समझता था क्योंकि मास्टर जी का मेहरबानी भरा हाथ मेरे सिर पर था। कमजोर लड़के तो वैसे ही डरते थे, जो जरा बड़े और तन्दुरुस्त थे उनको मास्टर जी से शिकायत का डर दिखाकर डरा लेता था।

लकड़ी की तख्ती और उर्दू का कायदा—यही मेरा बस्ता था। तख्ती को पानी से धोकर, उस पर गजनी का लेप किया जाता था और फिर उसे धूप में सुखाकर लिखने के लिए तैयार किया जाता था। मेरी तख्ती हमेशा मेरे साथी ही तैयार करते थे। जब तक मैं मॉनीटर नहीं बना था, तब तक यह काम मैं स्वयं दोपहर की छुट्टी के समय करता था क्योंकि सारे स्कूल को हिदायत थी कि दोपहर की छुट्टी में खाना खाओ और तख्तियाँ तैयार करो। पर जब मैं मॉनीटर बना तो लड़के मेरे दोस्त बन गये। मैं आधी छुट्टी के समय बड़े रोब से अचार के साथ परांठा खाता और मेरे दोस्त मेरी तख्ती तैयार करते। अफसर बनने का इतना फायदा तो होना ही चाहिए।

मास्टर जी की तरफ से घर खबर पहुंचाई गयी कि आपका लड़का बड़ा लायक है, पर घर का माहौल कुछ और ही था। कुछ समय से माँ के साथ दादा बूड़ सिंह का तनाव बढ़ रहा था। बाबा कहता, 'भई, लड़का छह-सात साल का हो गया, उसे घर का कामकाज करने दो। भेज देती है परांठे बांधकर स्कूल। सारा दिन मास्टरों की झिड़कियां खाकर लड़के का सांस सुखा रहता है। यह कौन से कामों में काम हुआ? पशु खुरली (चरागाह) पर भूखे-प्यासे बंधे रहते हैं। भैंसों को

बाहर न निकाला जाए तो दूध सूख जाता है...।

एक दिन मेरी माँ ने मुझसे कहा, 'बेटा, तू पढ़ने न जाया कर।'

'क्यों?' मैंने पूछा।

उनका जवाब था, 'अपने बाबा का काम करने में हाथ बँटाया कर।'

मैंने कहा कि मैं तो पढ़ने के लिए जरूर जाऊंगा। इसी तरह कुछ दिन और निकल गये। माँ ने बाबा को यह भी कहा कि लड़के के बापू ने जो चिट्ठी लिखी है कि लड़के को स्कूल भेजो, तो उन्हें क्या जवाब देंगे। इस पर बाबा ने कहा उसकी तो सिंगापुर में बैठे मत्त मारी गयी है। छोटे से लड़के को पढ़ाई की चिन्ता के बोझ से मारना चाहता है।

दरअसल बाबा का मकसद यह था कि खेतीबाड़ी के काम में लड़का उसका साथ दे। एक दिन पता नहीं कितनी लड़ाई हुई होगी, क्योंकि जब मैं स्कूल से वापस आया तो माँ की आंखें रो-रोकर सूज गयी थी। मैं तब तो कुछ न समझ सका, पर उदास जरूर हो गया। फिर कुछ देर बाद लड़कों के साथ गुल्ली-डण्डा खेलने बाहर चला गया। पर गाज अगले दिन गिरी जब मेरा परांठा तैयार नहीं था और बस्ता भी अपने ठिकाने पर नहीं था। मैंने माँ को कहा, 'मेरा परांठा दो, मुझे जल्दी जाना है। मेरे साथी तो गाँव से बाहर निकल चुके होंगे।'

'परांठा तो आज बना ही नहीं।' माँ ने कहा।

'चलो, कोई बात नहीं। मैं आकर खा लूँगा, पर मेरा बस्ता कहाँ है, वह नहीं मिल रहा।'

माँ ने का, 'तुम पढ़ने नहीं जाओगे।'

मैंने शोर मचा दिया कि मुझे स्कूल जाना है। माँ ने डांट-डपट की तो मैंने रोना शुरू कर दिया। माँ ने गुस्से में मेरा बस्ता परछत्ती पर फेंक दिया और खुद भी रोने लगी। मैं तो स्कूल जाने के लिए रो रहा था, पर माँ क्यों रो रही थी, मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। आखिर उदास होकर मैं घर से बाहर चला गया। रात को घर आया तो वातावरण शान्त था। मुझे खाना खाने को कहा गया, पर मैं रूठा हुआ था। रोटी नहीं खायी, बाहर से गन्ने वगैरा जो चूस आया था। माँ ने मुझे बहुत समझाया और यह भी कहा कि तेरा बाबा जिस तरह कहता है, उसी तरह करना पड़ेगा क्योंकि तेरा बापू घर में जो नहीं हैं। आखिर फैसला यह हुआ कि अगर पढ़ना है तो स्कूल के बजाय बाबा शाम सिंह के पास सुबह पढ़ने चले जाया करना और दोपहर को आकर पशुओं को चराने ले जाया करना। इस तरह दोनों काम हो जाया करेंगे। लेकिन कहां बाबा शाम सिंह की पढ़ाई, और कहां स्कूल की। पर किया क्या जाता। मैं राजी हो गया।

बाबा शाम सिंह सन्त

बाबा शाम सिंह जी की बगीची धरमूचक्क और जलाल उस्मान गांव के बीचों बीच थी। दो-तीन पक्के कमरे, एक बड़ा-सा पक्का चबूतरा और पास में एक कुआं। बगीचे में अधिकतर आमों के वृक्ष थे। यह बगीचा लगभग ढाई-तीन बीघे की जगह में होगा। दो तरफ पक्की दीवार और दो तरफ तारों-डंडों से बगीची का घेरा इतना मजबूत बनाया था कि आदमी या तो जलाल उस्मान वाली तरफ से बड़े गेट के रास्ते अन्दर आ सकता था या फिर धरमूचक्क की तरफ से छोटे फाटक के रास्ते। जिस तरफ तारों-डंडों की आदमकद दीवार बनायी गयी थी—यह जगह बाबा शाम सिंह ने स्वयं खरीदी थी। दुनिया की पहली लड़ाई में बाबा एक फौजी की हैसियत से लड़ाई लड़े थे। लड़ाई में इनके एक हाथ की छोटी उंगली गोली लगने से उड़ गयी थी। इसी कारण अंग्रेज सरकार ने इनको पेंशन देकर फौज से रिटायर कर दिया था। बाबा को लड़ाई में घमासान युद्ध को देखकर ज्ञान हो गया। कहने लगे—यह दुनिया फानी है। इन्होंने बहुत विद्या ग्रहण की। श्री गुरु ग्रन्थ साहब, कुरान-शरीफ और गीता के ज्ञानी थे। सच्चे का सत्कार करते और झूठे को बहुत फटकारते थे। जब भी कोई अनर्थ हो जाता था, तब भगवान को भी बहुत फटकारते थे। जो भी उन्हें मिलने जाए, दूर से ही पुकारे, बाबा जी नमस्कार।

न तो वह पैरों को हाथ लगाने देते थे, ना ही खुशामद पसन्द व्यक्ति को पसन्द करते थे। सभी बच्चों को यह हिदायत थी कि सुबह उठकर सूर्य को नमस्कार किया करो, यही भगवान है। पूजा करके खाना और सच बोलना-ये दो गुण विद्यार्थियों को विशेष रूप से सिखाते थे। बच्चों को पढ़ाने का कोई पैसा नहीं लेते थे। पढ़ाई के बाद हर बच्चे से काम करवाया करते थे। हर बच्चा आम के एक पेड़ को कुएँ से पानी निकालकर सींचे। पेड़ के इर्द-गिर्द बना छोटा-सा घेरा तीन-चार बाल्टियों से भर जाता था। या फिर रोड़ी कूटने का काम भी बच्चों से लिया जाता था।

रोड़ों को पकाकर, फिर हथौड़ियों से कूटकर बारीक किया जाता था। उसका जो सीमेंट बनता था, बाबा जी उससे बगीची की दीवार बना रहे थे। उन्हें कोई जल्दी नहीं थी। दीवार बनने में चाहे दसों बरस लगे। उन्हें कौन-सा किसी को हिसाब देना था।

मेरे ताया का बेटा कुन्दन सिंह, जो मुझसे चार-पाँच साल बड़ा था, बाबा के पास पढ़ता था। उसके साथ पहले दिन मुझे बाबा जी के पास भेजा गया। बाबा जी हमारे परिवार को जानते थे तथा मेरे ननिहाल वालों के साथ इनकी कोई दूर की रिश्तेदारी भी थी, कुन्दन सिंह के कहे अनुसार। मैंने दूर से ही 'बाबा जी, नमस्कार' का अलाप लगा दिया। बाबा जी अन्दर से निकलकर हमारे पास आये। उन्होंने पूछा, 'कुन्दन सिंह, यह नंती का लड़का है न?' कुन्दन सिंह ने हाँ में जवाब दिया तो बाबा जी ने कहा, कल जब मैं प्रसाद लेने गया तो नंती ने कहा (बाबा जी मेरी माँ को 'नंती' कहते थे। उसका मायके का नाम नंती था और सुसराल का नाम बलवन्त कौर था।) लड़के को पढ़ने का बहुत शौंक है और इसका बाबा इसको स्कूल नहीं जाने देता।' मैंने कहा कोई बात नहीं, जिनको पढ़ना है बिना स्कूल भी पढ़ लेंगे और जिन्हें नहीं पढ़ना, स्कूल में भी नहीं पढ़ेंगे। जैसे मेरे पास कई बुद्धू आते हैं।

'ओए जुगिन्दर इधर आ।' कुछ लड़के कुछ दूरी पर बैठे उंगलियों से कुछ लिख रहे थे, उन्हीं में जुगिन्दर, डरता-डरता हमारे पास आया। बाबा जी कहने लगे, 'देखो, यह भागो का लड़का इतना बुद्धू है कि दो महीने हो गये इसको 'स्वर' लिखना नहीं आया।

जुगिन्दर झट से बोल पड़ा, 'मुझे केवल ईडी (पंजाबी भाषा की इ) नहीं आती, बाकी सब कुछ आता है।'

बाबा जी को क्रोध आ गया, पर फिर भी बड़े प्यार से बोले, 'क्या तुझको कुछ आता है।'

बाबा जी के पास एक 'बाल उपदेश' था, खोलकर कहने लगे, 'ले भई, जुगिन्दर, ईडी छोड़ता जा, बाकी पढ़ता जा।' और कायदा जुगिन्दर के आगे कर दिया। वह बेचारा हक्का-बक्का कभी बाबा को देखे तो कभी हमें। उसकी हालत तरस खाने लायक थी। यह दृश्य देखकर मुझे भी बाबा से डर लगने लगा, पर बाबा जी ने जुगिन्दर को मारा बिल्कुल नहीं। वह बेचारा तो वैसे ही अधमरा-सा हो गया था।

बाबा जी ने सच बोलने के लिए एक लम्बा-चौड़ा भाषण दिया और मुझे

बोले, ‘आ काका, तेरी पढ़ाई शुरू कराऊँ, फिर आज तुमको रोड़े भी कूटने पड़ेंगे।’ जहाँ सात-आठ अन्य लड़के बैठे थे, हम वहाँ गये और बाबा जी ने पहले पाँच अक्षर अपने हाथ से लिख दिये। कहने लगे, ‘इस तरह के अक्षर उंगली से लिखता जा और मिटाता जा। इसके आगे कल बताएँगे। पर शर्त यही है कि ये पाँच अक्षर सुबह अपने आप लिखेगा तो!’

बाबा जी तो चले गये, पर तख्ती पर कलम से उर्दू लिखने वाला जमीन पर लिखने की कारीगरी मेरे वश में नहीं आ रही थी। मैंने कुन्दन सिंह की मदद चाही तो उसने चोरी-चोरी मेरे हाथ की मुट्ठी भींचकर और एक उंगली खोलकर, जब जमीन पर मेरी उंगली चलायी तो काम सहज हो गया।

बाबा जी का हुक्म था कि कोई भी लड़का एक दूसरे को कुछ न बताए। जब किसी को जरूरत हो तो वह बाबा जी कहकर पुकारे, बाबा जी स्वयं आकर उसकी समस्या हल करेंगे। पर बाबा जी पुकारने की हिम्मत किसी की नहीं होती थी। वह खुद ही एक-दो बार अपने विद्यार्थियों के पास चक्कर लगाकर उनकी पढ़ाई का जायजा ले लेते थे।

दूसरे दिन जब मैंने बाबा जी को भली-भांति पांच अक्षर लिखकर दिखाये तो उन्हें बड़ी खुशी हुई। अगले पांच अक्षर लिखकर वह कहने लगे, ‘कल जब तू दसों अक्षरे लिखकर दिखायेगा तो अगला सबक दूँगा। मैंने कभी ये पाँच तो कभी पहले पाँच को कई बार लिखकर दोहराया। मैंने कुन्दन सिंह की खुशामद करके नये पांचों शब्द उससे लिखवा लिये और याद कर लिये।

तीसरे दिन जब मैंने 15 अक्षर लिखकर बाबा जी को दिखाये तो बजाय खुश होने के नाराज हुए, कहने लगे, ‘पढ़ाई वही सही होती है जिसे पक्का किया जाए तुझे ये 5 अक्षर किसने बताए हैं?’ जो मैं कुन्दन का नाम लेता तो उसकी शामत आ जानी थी। मैंन कहा, ‘बाबा जी, ये अक्षर अपनी माँ से सीखे हैं।’ क्योंकि माँ को घर में थोड़ा बहुत अक्षर-ज्ञान था। उसका ताया बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था और बाबा शाम सिंह का दोस्त भी था। कहने लगे, ‘अगर माँ से कही पढ़ना था तो मेरे पास क्या लेने आये हो। जा, चला जा माँ के पास।’

मुझे एक गुर कुन्दन सिंह ने समझाया हुआ था कि जब बाबा गुस्से में हो तो झट कह दो, ‘बाबा जी, गलती हो गयी। माफ कर दो।’, और काम बन जाता था। मैंने जब गलती की माफी माँगी तो बाबा जी कहने लगे, ‘ठीक है, आज से हम तुम्हें दस अक्षर रोज लिखने को देंगे।’’

बाबा जी ने जब दस अक्षर लिखकर दिये तो कहा, ‘कल तेरी ‘स्वरों’ की

पढ़ाई पूरी हो जाएगी तो फिर बारी है भुलावें (व्यंजन) अक्षरों की। जो तुम इन अक्षरों में पास हो गये तो मैं कह सकूँगा कि तुम कितनी जल्दी पढ़ाई कर सकोगें।'

बाबा जी के सच बोलने का मुझपर आज तक असर है। एक दिन हम सब लड़के रोड़ी कूट रहे थे तो बड़े गेट से बाहर से आवाज़ आयी, 'बाबा जी, बाबा जी। और साथ ही किसी ने जोर-जोर से गेट खड़खड़ाना शुरू कर दिया। बाबा जी ने अन्दर से ही कड़कती आवाज में पूछा, 'कौन है?''

पुकारने वाले ने बाहर से अपना नाम बताया तो बाबा जी ने पूछा, 'क्या काम है?' आवाज आयी, 'जी, मैं आपके दर्शनों के लिए आया हूँ।'

बाबा जी अन्दर से बाहर आ गये और कहने लगे, 'दर्शन करने फिर किसी समय आ जाना, अभी हम कामकाज में व्यस्त हैं।'

पुकारने वाले ने जिद्द की, 'मैं बहुत दूर से आया हूँ और दर्शन करके ही जाऊँगा।'

बाबा जी ने एक बार गेट की तरफ और फिर हमारी तरफ देखा। बेहड़े में एक स्टूल पड़ा था, उसे गेट के पास रखकर ऊपर चढ़ गये। इस तरह बाबा जी गेट के दरवाजे से थोड़ा ऊपर हो गये। दरवाजे के ऊपर से अपना चेहरा बाहर निकालकर कहने लगे, 'ले भाई, कर ले दर्शन।' बाहर वाले आदमी को तो हम देख नहीं सकते थे, पर बाबाजी को उचके हुए देखकर डर रहे थे कि बाबाजी कहीं स्टूल से गिर न पड़ें। इसी हालत में बाबाजी की बाहर बातचीत जारी थी। बाहर से उसे आदमी ने कहा 'बाबजी, दर्शन तो मैंने कर लिए पर मैं आपका बगीचा देखना चाहता हूँ।'

बाबा जी ने बहुत कहा कि फिर कभी देख लेना, इस समय हम व्यस्त हैं, पर वह बड़ा जिद्दी निकला। कहने लगा, चाहे एक मिनट के लिए ही बाग दिखा दो।

बाबा जी गुस्से में स्टूल से उतरे तथा हमें हुक्म दिया, 'लड़को, खोल दो दरवाजा।' हमने जाकर दरवाजा खोल दिया। एक प्रौढ़ उम्र का साधारण-सा व्यक्ति सामने खड़ा था। वह अन्दर आया तो सामने खड़े बाबा जी ने बाग की तरफ इशारा करके कहा, 'देख लो बाग।'

उस आदमी ने इधर-उधर देखा और बाग की तरफ चल दिया। बाबा जी उसके पीछे चल दिये। पगडंडी से होता हुआ वह भलामानस आमों की पनीरी के पास पहुँच गया। उसकी ललचाई नजरें बाबा जी ने भाँप ली, पर कहा कुछ नहीं। वह आदमी बाग की तारीफ करता जा रहा था, पर बाबा जी चुप थे। जब वह

आमों की पनीरी के पास रुका और तारीफ। करते हुए बोला, 'बाबा जी, पनीरी में से अगर एक-दो बूटे मुझे दे दें तो आपकी बहुत मेहरबानी होगी।

बाबा जी ने तीखी आवाज में कहा, 'निकल जा झूठे कहीं के! आम के बूटे देने तो एक तरफ, मैं तेरी परछाई भी इस पनीरी पर नहीं पड़ने दूँगा। निकल जा इस बाग से।'

वह कुछ एतराज करने लगा तो बाबा जी ने उसे धक्के देना शुरू कर दिया। उसकी एक न सुनी और दरवाजे से बाहर निकाल कर ही दम लिया। हमें दरवाजा बन्द करने को कहकर बोले, 'ये लोग कितने झूठे और फरेबी हैं। यह आदमी घर से चला होगा आमों के बूटे लेने और यहाँ आकर सच बोलने की बजाय झूठ बोलकर हमें बेवक्त परेशान किया। मैंने यह पनीरी लोगों के लिए ही लगायी है और बहुत-से बूटे लोग ले भी गये हैं। इस दुष्ट को इस बात का ज्ञान भी होगा, इसीलिए पनीरी के पास जा पहुँचा।

'कहता था मैं दर्शन करने आया हूँ' एक झूठे, कहे कि मैं बाग देखने आया हूँ' दूसरा झूठ! याद रखो लड़को, झूठ बोलने वाले को आम नहीं, धक्के खाने को मिलते हैं। तुम लोग बाबा शाम सिंह के शिष्य हो। जीवन में कभी झूठ न बोलना। मार की चोटों की दर्दें थोड़े समय में भूल जाओगे, पर झूठे बोलने की तोहमत का दर्द सारी उम्र नहीं भूल सकोगे। जाओ, अब रोड़ी कूटो। मेरे साथ-साथ इस झूठे आदमी ने तुम्हारा भी समय बर्बाद किया है।

बाबा जी की एक बात और प्रशंसा-योग्य थी। समय को सर्वप्रथम मानते थे। उन्होंने हर काम समय से करने का नियम-सा बना रखा था। भिक्षा धरमूचक्क, जलाल या सैदपुर से लाते थे। भिक्षा मांगने का उनका ढंग भी निराला था। घर के बाहर वाले दरवाजे के आगे पहुँचकर पुकारते थे अलख निरंजन! अगर घर के अन्दर से 'बाबा जी आई' आवाज आ जाती तो वह उसके आने की प्रतीक्षा करते वरना अगले घर के लिए चल देते। कई घरों की औरतों को पीछे से दौड़कर रोकना पड़ता था। एक घर की एक महीने बाद ही बारी आती थी।

बाबा जी परलोक सिधार गये हैं, पर उनकी यादें अभी तक ताजा हैं।

मेरे बचपन के शौक

मुझे पढ़ाई के आलवा गुल्ली-डंडा खेलना, छुपना-छिपाना, छलाँगें लगाना बड़ा अच्छा लगता था। पढ़ने के बाद पशुओं को चराने के लिए ले जाना यह तो काम था, शौक नहीं। पुशओं को चराते हुए हमउम्र लड़कों के साथ कभी-कभार लड़ाई-झगड़ा भी हो जाता था। पर सबसे बड़ी मुसीबत थी हमारी लाखी यानि काली गाय। वह इतना भागती थी कि दिन में एक-दो बार तो मुझे उसे वापस लाने में रोना ही पड़ता था। उसे हवेली में से छोड़ा नहीं कि उसने दौड़ते हुए लोगों के खेतों को उजाड़ना शुरू कर देना। मैं होता तो था पर काली को सम्भालूं तो दूसरे पशु खेतों में मुँह मारना शुरू कर देते थे, अगर दूसरों को सम्भालूं तो दूसरे पशु खेतों में मुँह मारना शुरू कर देते थे, अगर दूसरों को सम्भालूँ तो काली तो हाथ ही नहीं आती थी। घरवालों को लोगों के उलाहने आने लगे थे। चराने वाले स्थान पर पहुँचने से पहले-पहले रास्तें के दोनों तरफ हरी-भरी खेती, कभी रास्ते के दायें, कभी बायें। मैं गाय को गालियाँ देता उसके पीछे भागता। चराने वाली जगह पहुँचता था तो कहीं सुख का साँस आता था। गाँव से चराने वाले स्थान तक पहुंचने में जितनी मुश्किल होती थी, वापसी के समय उतनी नहीं होती थी। शायद इसलिए कि चरने वाली जगह पेट भरने के बाद काली गाय को हरी-भरी खेती की कम ही परवाह होती थी। लेकिन फिर भी एक दो बार वह मुझसे गालियाँ जरूर खाती थी। उसे मैं कहता था, 'मैं तेरे टखने तोड़ दूँगा।' पर टखने खाक तोड़ने थें उसे डंडा मारने लगता तो मैं खुद ही गिर जाता था। वह तो इतनी चुस्ती-फुर्ती की मालिक थी कि उसे मिलखा सिंह भी होता, तो नहीं छू सकता था। उसके पीछे भागते हुए मेरे अपने टखने टकरा जाते और खून निकले लगता। अभी तक मेरे टखनों पर उस समय के निशान हैं, क्योंकि ज ख्म पर फिर चोट लग जाया करती थी। इस मुसीबत का हल मेरे बाबा ने निकाला और गाय के गले में एक लकड़ी बांध दी।

उसे डेढ़-दो फुट लम्बी लकड़ी ने गाय को तंग करना शुरू कर दिया। जब वह दौड़ती, लकड़ी उसके अगले घुटनों से टकराती। बेचारी के घुटनों की हालत मेरे टखनों जैसी हो गयी और साथ ही दौड़ने की गति कम हो गयी। अब वह हरे-भरे खेतों में छलाँग मारकर नहीं घुस सकती थी और धीरे-धीरे मैं घुसने नहीं देता था। बेचारी को अपना अन्दाज बदलना पड़ा और केवल चरने वाली जगह जाकर ही, चरकर गुजारा करना पड़ा। मरता, क्या न करता वाली बात हुई बेचारी के साथ। हाँ, एक बात थी कि यह गाय थी बहुत अच्छी। हमारी दादी इसका घी इकट्ठा कर लेती थी और इसका एक बछड़ा हमारे पास था लाखा बलद (बैल)। उस बेचारे ने बड़ी कमाई की। जिस साल वह मरा, मेरे पिता गाँव में थे यानी सिंगापुर से आ चुके थे और खेतीबाड़ी कर रहे थे। इस बैल के मरने के दुख में मैंने उनकी आँखों में आँसू देखे थे, जिन्हें देखकर मैं बहुत दुखी हुआ था।

बाबा शाम सिंह से पढ़ने वाले लड़के, क्या बड़े क्या छोटे, सभी भलेमानस थे। विद्या चाहे उनमें से, मेरे अलावा एक-दो ने और प्राप्त की होगी, पर बाबा जी का सिखाया हुआ चालचलन सब पर हावी था। लेकिन दूसरे लड़के जो पढ़ने नहीं जाते थे वे अपने आपको बादशाह मानते थे। वे पढ़ने वालों को बुजदिल समझते थे। मुझे, मुझसे तीन-चार साल बड़ा एक लड़का अक्सर तंग करता था। उसका नाम शंगारा था। मैं उसका सामना करने से कतराता था। एक बार तो मैंने अन्धेरे में छुपकर कृपाण मारने के लिए भी सोच लिया था।

वाकया कुछ इस तर हुआ कि हमारे गाँव में निहंग सिखों ने लोगों को अमृत-छकाने का प्रचार किया। कहने लगे—जिसने अमृत नहीं छका वह सिख नहीं बन सकता। बहुत से लोगों ने अमृत छका, जिसमें औरत-मर्द सब शामिल थे। मैंने भी जिद की और अमृत छकने के लिए शामिल हो गया। बच्चों में एक मैं ही था बाकी सब सयाने थे। हम सबको एक कतार में बिठाकर अमृत तैयार किया गया और छकाया गया। हमारे बीच में एक लड़का खेल सिंह, जिसके बाद से लड़कियों की कतार शुरू होती थी, इन्कार कर बैठा। एक बार में ही सबने अमृत पिया और वापसी में सबको एक बार अमृत और पीना था। जब लड़कियों की तरफ से पिलाता हुआ एक सिख खेल सिंह को पिलाने लगा तो उसने मना कर दिया। कहने लगा, 'मैं लड़कियों का जूठा नहीं पियूँगा।'

अमृत पिलाने वाले ने कहा, 'भाई, अमृत जूठा नहीं होता। वाहे गुरु बोल के छक लो।' पर खेल सिंह तो अड़ गया।

निहंग सिख ने म्यान से तलवार निकाल ली और गरजते हुए बोला, 'अमृत

छकता है, या करूँ तेरा काम तमाम।'

खेल ने डरते-डरते अमृत का घूँट भरा और फिर उसके बाद कोई कैसे मना करता, सभी ने चुपचाप पी लिया। मेरे मन पर उस प्रचारक का इतना असर पड़ा कि मैं भी एक कृपाण गले में पहनने लगा और अपना रहन-सहन सिखों के उसूलों जैसा बना लिया।

मेरा कृपाण बड़ा और मैं छोटा। कामधन्धे में रुकावट आने लगी। घास खोदते हुए उसे कमर में बाँधना पड़ता। यह प्रथा मैंने कोई दसएक महीने निभाई होगी, लेकिन जिन लोगों ने मेरे साथ अमृत पिया था, किसी ने एक महीना भी यह प्रथा नहीं निभाई होगी। किसी ने कहा, 'यार' मैं नहाने लगा तो कच्छा बान्धना भूल गया, फिर सोचा जब एक बार प्रथा भंग हो ही गयी तो फिर क्या रखनी है।' सबको ही यह प्रथा निभानी मुश्किल लगी। वैसे भी पूरे गाँव में प्रथा निभाने वाले दो ही आदमी थे और वे बुजुर्ग थे। मेरे प्रथा को निभाने की गाँवभर में चर्चा थी, पर कुश्तियाँ लड़ने के लिए मुझे कृपाण उतारनी पड़ी। एक बार कृपाण उतरी तो ऐसी उतरी कि दूसरी की तरह मैंने भी सोचा कि अब दुबारा पहनने से भूल का सुधार तो हो नहीं सकता। शंगारे को कृपाण मारने का विचार भी उन्हीं दिनों का है। बात तो पूरी याद नहीं पर एक वाकया मैं कभी नहीं भूल सकता। क्योंकि अमृतधारी होने से पहले तो मैं शंगारे से कन्नी कतर। जाता था, पर जब मैंने कृपाण पहन ली थी, अपने आपको कुछ शक्तिशाली महसूस करने लगा था, साथ सिंह साहब ने विश्वास दिलाया था कि अब आप पंथ के हो गये हो पंथ आपका है। जब कभी आप पर कोई मुसीबत आये तो पंथ आपकी सहायता करेगा। इस हालत में मेरे सामने शंगारा-वंगारा ही थे, मैं अब बिल्कुल निडर हो गया और जब भी कोई अच्छा-सा पत्थर मिलता तो मैं अपनी कृपाण को उसपर रगड़कर और तेज कर लेता।

सारे लड़के शंगारे की खुशामद करते थे और पहले तो मैं भी करता था, पर अब मैं खुद-मुख़तार हो गया था। एक दिन थोड़ी तू तू-मैं मैं के बाद शंगारे ने मेरी जाँघ पर डंडा मारा, पर लगा वह मेरी कृपाण की म्यान पर। म्यान थोड़ी-सी टूट भी गयी। चोट तो मुझे बिल्कुल नहीं लगी, पर अपमान की चोट मुझे इतनी लगी कि मेरी आँखों में आँसू आ गये। मैं उस समय शंगारे के डण्डे का जवाब न दे सका क्योंकि यह तो चैलेंजबाजी थी और मुझे यह भी पता था कि यह मुझ से ज्यादा ताकतवर है। मैं मन में योजनाएँ बनाने लगा—कि शाम को घर की दीवार से सटकर खड़े रहना है कि जब भी शंगरा यहाँ से गुजरेगा, उसके पेट में कृपाण मारकर दौड़ जाना है।

इस योजना का जिक्र मैंने किसी से नहीं किया और शाम होने पर दीवार के पास शंगारे का इन्जार करने लगा। पर वह उस दिन उस तरफ से गुजरा ही नहीं और रात को सोने के बाद दूसरे दिन पता नहीं क्यों मेरा जोश अपने आप ही ठण्डा पड़ गया। शंगारे के प्रति गुस्सा तो था पर कृपाण मारने वाला विचार रद्द हो गया और दस-पन्द्रह दिन बाद हमारा दूना बोलचाल शुरू हो गया। लेकिन शंगारे का रौब व दबदबा तब तक जारी रहा जब तक मैंने उसे पकड़कर नीचे नहीं पटक लिया। कुश्ती के शौक के कारण मेरी खुराक में माँ ने विशेष रूप से घी का इस्तेमाल बढ़ा दिया था। सर्दी के मौसम में घी विशेष रूप से खिलाया जाता था। मैं जल्दी ही तगड़ा होना चाहता था। घरवालों को चिन्ता थी कि नाबालिग का ब्याह कर दिया है बड़ी उम्र की लड़की के साथ, यह अब जल्दी जवान हो जाए। मैं अपने आपको अच्छा-खासा तन्दुरुस्त महसूस कर रहा था, जब शंगारे के साथ हाथापाई हुई। पहली बार तो हँसते हुए धक्का जोरी हुई। मैंने उसे धकेलकर दीवार से गिरा दिया, पर उसकी तसल्ली न हुई। दोबारा जब बाकायदा पकड़ हुई तो मैंने उसे नीचे गिरा लिया। इसके बाद उसने मुझसे पंगा लेना बन्द कर दिया। हौले-हौले दूसरे लड़कों को इस बात का पता लगा...और तब मैं बचपन से बाहर ही निकल आया था।

गाँव के त्यौहार लड़के-लड़कियों के लिए हँसने-खेलने का सुनहरी अवसर प्रदान करते थे। सालभर के बाद यह सावन का महीना गाँव और जलाल उस्मान के लोग एक जगह इकट्ठा होते थे। दोनों गाँव के बीच कुश्ती और कबड्डी का खेल औपचारिक रूप से होता था। कुश्ती में अधिकतर जलालिये ही नम्बर मारते थे, पर एक साल हमारे गाँव का एक जाट मुसलमान भल्लो आगे आया, जो बाहर से आया था। पहले हफ्ते में इस पहलवान ने कुश्ती जीत ली। दूसरे हफ्ते में उसने फिर एक जलालिये को हराया तो जलालियों ने शोर मचा दिया कि यह पहलवान धरमूचक्क का नहीं, यह तो बाहर से आया है। हिम्मत है तो निकालो कोई गाँव का पहलवान।

हमारे गाँव में कुछ घर मुसलमानो के थे। ये भी रन्धावे ही थे। किसी समय मुगल साम्राज्य चरम पर था तो ये लोग मुसलमान बन गये होंगे। जैसे शेष रन्धावे सिख-राज के समय, यानी महाराजा रणजीत सिंह के समय सिख बन गये थे। हमसे आगे एक तंदेल गाँव वालों ने इस बात का सबूत दिया कि यह फलाने का लड़का है, बचपन में अपने रिश्तेदारों के साथ बाहर चला गया था और अब यह सुख से जवान होकर गाँव आया है और अपनी खानदानी जमीन सम्भालेगा। तब जाकर कहीं जलालिये ठण्डे

पड़े। हमारे गाँव में हराणकियों में दो-तीन लड़के पहलवानी करते थे, पर थे बहुत शानदार पहलवान। एक पहलवान था लक्खा सिंह। दिनभर खेतों में काम करके लोग अधिकतर शाम के समय, अन्धेरा होने पर गाँव के कुएँ पर आकर नहाया करते थे। मैं लक्खा सिंह को नहाते हुए देखने के लिए चुपचाप कुएँ के चबूतरे के कोने पर बैठ जाता था। पहलवान का शरीर बहुत सुन्दर था।

एक बार हमारे गाँव को किसी ने बाहर से आकर ललकारा कि है कोई इस गाँव में मुझसे कुश्ती करने वाला तो वह निकले मैदान में। पहलवानी के नियमानुसार अगर गाँव में, बाहर से आये पहलवान से कुश्ती लड़ने योग्य कोई नहीं है, तो पूरा गाँव बाहर से आये पहलवान को रसद इकट्ठी करके देता था। पर हमारे गाँव में तो पहलवान थे, इसलिए उस पहलवान के लक्खा सिंह के साथ हाथ मिलाये गये। पूरे गाँव में चर्चा हो गयी। पूरा गाँव मन्नतें मनाने लगा कि भाई गाँव की इज्जत बच जाए।

निश्चित हुए दिन को गाँव एक मैदान में इकट्ठा हो गया। पहलवानों की कुश्ती हुई और बराबर रही। गाँव वालों ने सोचा कि भगवान ने दोनों धड़ों की इज्जत रखली। मैं इस कुश्ती की चर्चा से बहुत प्रभावित हुआ था। उस समय मैं सात-आठ बरस का था। मैंने घर वालों से कहा कि मुझे भी लंगोट सिलवा दो। माँ ने कहा कि लंगोट का तुझे क्या करना है? मैंने कहा कि मैं भी दण्ड किया करूँगा। और बैठकें करूँगा। माँ ने मेरा कहना मान लिया और मैंने अपने सगों में से एक चाचे सखन सिंह के पास बैठकें करनी सीख लीं। पूरे बदन पर तेल लगाकर, जिस तरह वह दण्ड-बैठकें करता था, मैं भी करने लगा। हमारे गाँव में दो और लड़कों के नाम दारा ही थे। एक तो मेरा साथी ही था। शगल के तौर पर देखने वालों ने मेरी और दारे नम्बरदार की कुश्ती करवाई, क्योंकि मैं सूतना (लंगोट) जो कन्धों पर रखने लगा था। मैं लंगोट कसके मैदान में उतरा, तो मेरा हमनाम बेचारा कच्छा पहने हुए मुझसे कुश्ती लड़ने लगा।

पक्की जगह, कभी वह मुझे नीचे ले ले तो कभी मैं उसे नीचे ले लूँ। बहुत रगड़े लगी। कुहनियों से खून निकलने लगा, पर हार-जीत का फैसला न हो पाया। गाँव के तमाशबीनों में से एक बुजुर्ग ने हमें कुश्ती से हटाया और कहा कि भई आज तो बराबर रह गये हो, अब दो चार महीने के बाद का कोई दिन तय कर लो, फिर तुम्हारी कुश्ती देखेंगे। मैंने कहा कि मुझे मन्जूर है, जब भी गाँव वाले चाहेंगे मैं कुश्ती लडूँगा। छह महीने बाद का दिन तय हुआ।

इसी दौरान हमारे गाँव के सरपंच ने लंगर लगाया और कुश्तियाँ भी करवायी।

बड़े पहलवानों की तो मुझे याद नहीं, पर मेरी कुश्ती जमाला से हुई थी। जमाला मुझसे बड़ा था, पर जिसके हाथ प्रशंसा वाली बात हो गयी, मैंने अचानक जमाले को चित कर दिया। लोगों ने मुझे कन्धों पर उठा लिया, तब मुझे पता चला कि मैंने कुश्ती जीत ली है। सरपंच ने ईनाम में मुझे आठ आने दिये। बस, फिर क्या था, मेरी तो सारे गाँव में धूम मच गयी ओए, दारे ने जमाले को चित कर दिया।

इसके बाद शाम को कबड्डी खेलने वाले लड़कों में शामिल किया गया। उस जमाने में दिन के कामकाज के बाद, लोग शाम को गाँव के चौक में चबूतरों पर इकट्ठा हो जाया करते थे। बुजुर्ग तो गप्पें हांककर अपना मन बहला लेते थे और जवान कबड्डी, खेलकूद, बोरी या पत्थर उठाकर अपना मन बहलाते थे तथा कमजोर लोग देख-देखकर और खिलाड़ियों की बातें करके अपने मन को तसल्ली दे लेते थे।

छह महीने बीत गये। कुश्ती का निश्चित दिन आ गया। मेरे प्रतिद्वन्द्वी ने नानुकर की पर तमाशबीन उसे जबरदस्ती ले आये और मुकाबला शुरू हुआ। क्योंकि जमाले को हराकर मेरी कुछ धाक जम गयी थी और हौसला भी बढ़ गया था। मैंने उसे नीचे तो गिरा लिया पर वह चित न हो सका। चित करने के दाँवपेंच तो आते नहीं थे। खैर, खेल लम्बा चला और टखने व घुटने छिल गये। गाँव वाले भी बच्चों की परवाह नहीं करते थे। अगर बड़ों की कुश्तियाँ होती तो किसी मैदान मे ंनरम जगह पर होती, पर हमें वह पहलवान थोड़ा ही समझते थे। उनके लिए तो यह बच्चों का खेल था, पर हमें तो जख्मों पर मरहम के फाहे रखने-लगाने पड़े। कुश्ती फिर बराबरी पर खत्म की गयी और अगली तीज पर लड़ने की तारीख तय की गयी। घर पहुँचा तो माँ की डाँट डपट और झिड़कियाँ पड़ी कि यह लहूलुहान होकर कहाँ से आया है? जब कुश्ती की बात बतायी तो माँ ने कहा, 'तू तो दण्ड बैठक ही कर लिया कर, कुश्ती न लड़ा कर। जब बड़ा हो जाएगा तब लड़ लिया करना।' माँ ने तो यह कहकर बात टाल दी पर मैंने आने वाली तीज के लिए तैयारियाँ शुरू कर दी। एक लड़का था—सोखी, उसे मैंने दोस्त बना लिया और कहा, 'तुम्हारे जो पहलवान हैं उनसे कुछ दाँव ही सीख लें।'

उसने वायदा तो किया लेकिन दाँव सिखाने के लिए पहलवानों के पास लेकर नहीं गया, खैर, मेरे कामों में एक काम और बढ़ गया था तड़के उठकर पट्ठे (गाया-भैंस का चारा) काटकर घर लाने का, फिर नहाकर बाबा शाम सिंह से पढ़ने जाना और वहाँ से आकर पशुओं को चराने ले जाना। केवल शाम के वक्त ही मुझे व्यायाम करने की फुर्सत मिलती थी और पहलवान तो सुबह-सुबह अखाड़े में व्यायाम करते थे और उनके पास घर के काम-काज भी नहीं थे। पर मेरा बिना काम किये यह

सब कर पाना मुश्किल था। मैंने सोचा बड़े होकर ही दाँवपेंच सीख लूँगा, अभी क्या जल्दी है! पर समय तो किसी का इन्तजार नहीं करता। तीजों का त्यौहार आ गया। मैं पहली तीज को ही कुश्ती के लिए पहुँच गया पर मेरे प्रतिद्वन्द्वी ने इन्कार कर दिया। फिर मेरी कुश्ती जलाल उस्मान के एक पहलवान के बेटे से हुई। लोग समझते थे कि पहलवान का बेटा है, मुझे चित कर लेगा, पर भगवान ने जिता मुझे दिया। बस, फिर क्या था। मेरे तो पाँव जमीन पर ही न पड़े रहे थे। उस दिन पूड़े और खीर भी कुछ ज्यादा ही स्वाद लगे। मेरी ऐसी छवि बन गयाी कि छोटे-जोड़ों में मैं भी भल्लो पहलवान की तरह अकड़ से चलने लगा।

मेरी सगाई और विवाह

हमारे गाँव के पास एक मेला लगता था। हर साल गर्मियों के मौसम में लोग हड्डी-तोड़ के अनाज घर लाते थे। उसके बाद यह मेला तीन दिन तक चलता था। गीत-संगीत के अलावा अन्तिम दिन कुश्तियाँ भी होती थी। मेले की तैयारियाँ कई दिन पहले से ही शुरू हो जाती थी।

इस बार मेले के लिए मेरे कपड़े खास तौर से अच्छे बनाये गये। मैने सोचा पिता सिंगापुर से नये-नये आये हैं, इसलिए कमीज और पगड़ी बढ़िया बनायें हैं पर बात कुछ और ही थी। मेले वाले दिन मेरी सगाई होनी थी। माँ ने कहा, 'बेटा, सुबह मेला देखने जल्दी न चले जाना।'

'नहीं माँ, पट्ठे तो मैं रात को तोड़ लाऊँगा और सुबह मैं और सेवा दोनों मेला देखने जाएँगे।' मैंने जवाब दिया।

सेवा मुझसे दो साल बड़ा है और सगों में है, क्योंकि उसका ननिहाल भी रतनगढ़ ही है इसलिए वह मासी का बेटा यानी भाई लगता था। सेवा से कभी मेरी लड़ाई होती तो वह रौब जमाने के लिए कहता, 'हम चार भाई हैं, तुम्हें मारा करेंगे।'

मैं कहता, 'हम दो ही इतने तगड़े हो जाएँगे कि तुम चारों से निपट लिया करेंगे।' यह बच्चों की बड़ी-बड़ी बातें थी। वैसे भी गाँव की जिन्दगी में ताकतवर से लोग बहुत डरते हैं। 'भगवान पास है या मुक्का' वाली-कहावत गाँवों से ही निकली है। शहरवाले तो झट मुकदमे-कचहरी की तरफ चल देते हैं, पर गाँव वाले ताकतवर व कमजोर का फैसला मुक्कों से करके फिर एक-दूसरे के साथ मिलने-बैठने लगते थे। हमारा नाना लछमण सिंह बड़ा जवान था। कहता था 'अगर शरीक वश में न आता हो, तुमसे तगड़ा हो तो उसके घर ठिगनी-सी लड़की का कहीं से लाकर रिश्ता करा दो। फिर क्या है, छोटे-छोटे बच्चे होंगे जब मन किया उन्हें मार लिया।' बड़ा दूरअन्देश था हमारा नाना। खैर, बात तो थी मेले जाने की। माँ बोली, 'पुत्र,

बात पट्ठे लाने की नहीं है, कल तेरा छुहारा पड़ना (सगाई) है। लड़की वाले सवेरे आएँगे और दोपहर के बाद छुहारा पड़ जाएगा। फिर तू मेले चले जाना। और नहा धोकर अच्छी तरह पगड़ी बाँध लेना।'

मैं दौड़ा-दौड़ा सेवा के पास गया और उसे बताया कि कल मेरी सगाई हो रही है।

अगले दिन सारे काम जल्दी-जल्दी निपटाकर बैठ गये। मेरे होने वाले ससुर के साथ एक और आदमी भी आया था। आँगन में कई और आदमी भी इकट्ठे हुए। शायद मामा रूड़ सिंह भी आया था। मुझे सजाया गया, नयी पगड़ी बाँधी गयी पर मुझे उत्सुकता थी कि छुहारा कैसे पड़ता है? मेरे होने वाले ससुर ने मुझे बुलाया, 'आ काका, मेरे पास आ जा।' पर मैं अनजान आदमी के पास जाता हुआ झिझक रहा था। फिर पिता ने बुलाया, 'आ, मेरे पास बैठ।' मैं चुपचाप उनके पास जा बैठा। अब याद नहीं आ रहा, पर ससुराल से आए आदमी ने कुछ पूछा था तो मैंने कोई जवाब नहीं दिया था। उन्हें शक हुआ कि लड़का कही गूँगा तो नहीं। फिर माँ ने कहा, 'बेटा तुम्हें मेले में कब जाना है?'

मैं झट बोल पड़ा, 'मुझे पैसे दो, मुझे अभी जाना है।' इसपर सभी खिलखिलाकर हँस पड़े। उस आदमी ने कहा, 'भई, मैं सोचने लगा था कि इतना खूबसूरत लड़का कहीं गूँगा तो नहीं?' मेरे ख्याल में यह आदमी मेरे भावी ससुर के साथ नाई बनकर आया था, क्योंकि उसके कहने से मेरे ससुर ने चाँदी का एक रुपया मेरे हाथ में रखा, मेरे मुँह में छुहारा डाला और बाकी रस्म उन लोगों ने बाद में पूरी की होगी। मैं तो झट माँ के पास गया और चार आने जो मेले-खर्च के लिए लेने थे, लिये और दौड़ा बाहर की तरफ। माँ ने चार आने दिये साथ ही हिदायत दी, 'शगुन का रुपया कहीं खो न देना।' मैंने रुपया पगड़ी के छोर में कसकर बाँध लिया और चार आने जेब में रख लिये।

मेले पहुँचे तो मेला पिछले साल से भी अच्दा लग रहा था। शायद मेरे मन पर सगाई का असर रहा होगा। चार आने मेरे और चार आने सेवा के। हमने जलेबियाँ और पकौड़े खाये। खेलने के लिए सीटी और गुबारे लिये। और जब पैसे खत्म हो गये तो हमारे लिए मेला ही खत्म हो गया। सेवा को पता था कि मेरी पगड़ी के छोर में रुपया बँधा है। बोला, 'यह रुपया तुड़ा ले?' मैंने कहा, 'भई, यह तो छुहारे का रुपया है, यह नहीं तुड़ाना।

सेवा कहने लगा, 'जब मेरा छुहारा पड़ेगा मैं तुम्हें अपना रुपया दे दूँगा।'

'तेरा छुहारा कब पड़ेगा?'

उस बेचारे को पता ही नहीं था कि उसका छुहारा कब पड़ेगा, पड़ेगा भी

या नहीं, क्योंकि उस जमाने में लड़कियों की बहुत कमी थी। आये दिन गाँव में चर्चा होती थी फलाने ने लड़की पैदा होते ही मार दी और कह दिया कि मरी हुई पैदा हुई है।

मेरे बचपन की सगाई ने आगे क्या गुल खिलाये, वह भी आपको बताता हूँ। मेरा ससुर किसी रजववाड़े खानदान की शाख था पर अब बड़ी मुश्किल चाय-पानी पीने लायक रह गये थे। सगाई वाले दिन रात को शराब पीकर उसने बड़ी डींगे हाँकी, पर समझदार व्यक्तियों ने पता लगाया कि अब इसके पास केवल खानदानी रुतबा ही रह गया है—नगद पानी खत्म हुआ।

खैर, जो भी होगा भगवान जाने, पर अगली घटना यह हुई कि वह मेरे पिता और बड़े मामा ठाकुर सिंह के साथ धन कमाने के लिए सिंगापुर चला गया। शराबी-कबाबी आदमी था और वहाँ करनी पड़ती थी मेहनत, सो दुखी हो गया। आखिर पिता और मामा के साथ लड़कर वापस हिन्दुस्तान आ गया, साथ ही तोड़ दी हमारी सगाइ। सगाई टूटने की खबर रतनगढ़ पहले पहुँची, क्योंकि वह बिचौलिये थे। मामा रूड़ सिंह को बहुत गुस्सा आया कि यह तो हमारी बदनामी है। उसने कहा कि धरमूचक्क वालों को पता लगने से पहले लड़के की सगाई कहीं और कर देंगे। पर ऐसी बातें कहा छुपी रहती हैं। माँ और मेरी दादी को यह खबर मिल गयी। गाँव वाले तो सारे अपने ही थे। बड़ी चर्चा हुई भई, रतनगढ़ वालों ने यह ऐसा रिश्ता कराया ही क्यों, लड़का कौन-सा बूढ़ा हो चला था। जितने मुँह उतनी ही बातें! मेरी माँ भी बेचारी दुखी! अपने मायके के बारे में बातें सुनना औरतों को बहुत बुरा लगता है। खैर, थोड़े ही दिन बाद मामा रूड़ सिंह अपनी ससुराल के रिश्तेदारों में से मेरे लिए रिश्ता लाया। जल्दी में यह भी न देखा कि लड़का 7-8 साल का और लड़की 14-15 साल की। उसे तो अपनी बेइज्जती की चिन्ता थी—लड़के-लड़की की कौन परवाह करता था। सगाई की रस्म दुबारा हो गयी। पिता जी तो सिंगापुर में ही थे। दो साल बाद वापस आये। यह बात 1937 की रही होगी। जब पिताजी वापस आये तो मेरे चाचा लोग मक्खन सिंह, वस्सन सिंह और निरंजन सिंह भी सिंगापुर जाने के लिए तैयार हो गये। मामा रूड़ सिंह एक दिन गाँव आया और बोला, 'आप लोगों की सिंगापुर से वापसी न जाने कब हो। ऐसा करते हैं कि दारा की शादी कर देते हैं।'

यह बात सबको मजाक लगी। पिताजी 1937 में आये और 1938 में वापस जाने का कार्यक्रम था। कहने लगे, 'लड़का तो अभी बिस्तर में ही पेशाब कर लेता है, इसका अभी ब्याह करके क्या करेंगे?'

यह बात भी सच्ची थी। मैं रात को सोते हुए बिस्तर गीला कर देता था। यह

पता नहीं कि दूध वगैरा ज्यादा पीने के कारण था या और कोई बात थी। पेशाब तो मेरा हजार कोशिशों के बावजूद भी नहीं रुकता था। जब बिस्तर गीला हो जाता, तब ही पता लगता था। सुबह शर्म भी बहुत आती थी। एक बार तो चाँदनी रात में छत पर सोया तो पेशाब का सपना देख रहा था और बड़े मजे से मैं हल्का हो रहा था, पर अगले ही पल, जब गर्म-गर्म और गीला-गीला सेंक जाँघों को लगा तो मेरी नींद खुल गयी। बिस्तर गीला देखकर एक विचार आया कि क्यों न दिन निकलने से पहले बिस्तर सुखा लिया जाये! दरी वगैरा को चाँद की चाँदनी में सूखने के लिए डाल दिया और मैं बिना बिस्तर ही चारपाई पर सो गया।

सुबह माँ ने उठाया और पूछा, 'अरे! तुम बिना बिस्तर चारपाई पर सो रहे हो और बिस्तर मुँडेर पर पड़ा है बात क्या है?'

'कुछ नहीं, ऐसे ही पड़ा था।' मैंने कहा। माँ ने जाकर गीली दरी देखी तो वह माजरा समझ गयी। यह बात सारे गाँव में मेरा मजाक उड़ाती रही। हँसी-हँसी में यह बात मामा को भी बता दी गयी क्योंकि कुछ समय से मेरा नींद में पेशाब करना कम हो गया था। महीने में एक दो बार इस तरह का कार्यक्रम हो जाता था। पहले तो हर रोज ही होता होगा, पर बच्चों को यह सब माफ ही होता है, पर 10 साल की उम्र में बन्दा ऐसी हरकत करे तो लोगों में मजाक का कारण बनाना ही हुआ। इस बात का बड़े होकर पता लगा कि अगर रात को सोते समय दूध न पिया जाए तो इस समस्या से बचा जा सकता है। दूध दिन में चाहे जितना पी लो पर रात को सोते समय न पीयो।

मामा का जोर पड़ने के कारण, महीने-दो महीने के शोरशराबे के बाद मेरी शादी की तिथि तय हो गयी। घरवालों को विश्वास दिलाया गया कि मुकलावा (गौना) जब आप कहेंगे, तब ले लेना पर ब्याह आप अभी कर दो।

बड़ी धूमधाम से बारात चढ़ी। चालीस-पचास घोड़ों पर बाराती सवार हो गये। जिस लड़के को मेरा सरबाला बनाया गया वह पिता के एक सिंगापुरी दोस्त का लड़का था। उसका नाम तो अब याद नहीं आ रहा, पर गाँव भोमा-बोझा था। शायद उसकी उम्र भी मुझसे कम थी।

घोड़ों को भागते देखकर मेरी घोड़ी भी भागने लगी और हम डर के मारे काठी पकड़े घोड़ी को पुचकारते हुए ससुराल पहुँचे। एक-दो बार तो गिरते-गिरते बचे। बाराती सभी अपनी मौज-मस्ती में थे। हमारी कौन परवाह करता! ससुराल वालों का गाँव आया तो जान में जान आयी। हमें घोड़ी से उतारा गया। रिवाज के अनुसार स्वागत हुआ। रात को खाना खाने गये तो मुंडेरों पर बैठी औरतों ने जौं बाँधनी शुरू कर दी। बारातियों में खुसुर-पुसुर शुरू हो गयी। घर वालों को पता लगा, बारातियों में ऐसा

कोई चतुर आदमी नहीं था जो जौं छुड़ा सकता। मामा रूड़ सिंह ने शोर शराबा कर दिया कि यह रिवाज बहुत पुराना हो गया है। सिखों में जौ बाँधने का रिवाज तो है ही नहीं। निपटाओ जी, निपटाओ। जल्दी करो!

खाना शुरू हो गया। बाराती खाना खाने लगे, पर छतों पर बैठी हुई औरतों ने मामा को गालियाँ देनी शुरू कर दी, पर मामा तो उन सबको पहले से ही जानता थां रोटी खाये जाए, साथ ही गालियाँ भी खाये जाए और बीच-बीच में औरतों से मजाक भी करता जाए। छत पर बैठी दो-तीन औरतों ने यह भी कहा कि लड़का तो उम्र में छोटा है।

खाने से फारिग होकर हवेली में वापस आ गये। रात को मैं तो सो रहा था, जब मुझे मेरी बुआ के बेटे बछित्तर ने जगाया। तीन चार आदमी दूध से भरी बाल्टियाँ लिये सबको दूध पिला रहे थे। मैंने दूध पीने से इन्कार कर दिया, पर वे दूध पीने को मजबूर करने लगे कि लड़के को दूध जरूर पिलाना है। मेरे साथियों ने भी उन लोगों का ही साथ दिया! बछित्तर ने दूध का गिलास मेरे मुँह से लगा दिया और मैं डरते-डरते पी गया। माँ ने कहा था कि रात को सोने से पहले पेशाब कर लेना। सो, दूध पीने के बाद माँ की बात याद आ गयी क्यों कि डर जो लग रहा था कि अगर आज बिस्तर गीला हो गया तो बहुत हँसी उड़ेगी। घर की बात तो ठीक है पर ससुराल में आकर यह हरकत हो गयी तो पता नहीं क्या होगा!

बछित्तर को साथ लेकर बाहर आया और पूरा जोर लगाकर पेशाब किया पर रात को फिर भी चाँद चढ़ ही गया। मुँह अन्धेरे मैंने बछित्तर को जगाया और कहा, 'ज्यादा तो नहीं पर बिस्तर का थोड़ा-सा हिस्सा गीला हुआ है।'

बछित्तर बहुत समझदार लड़का था, बोला, 'जैसे तैसे पड़े रहो। सवेरे मैं कोई न कोई बन्दोबस्त कर दूँगा।' वाकई उसने मुझे बाल-बाल बचा लिया। बाराती सुबह उठकर जब जंगल-पानी गये तो उसने मेरा बिस्तर, उस बाराती के बिस्तर से बदल दिया, जिसके साथ एक बच्चा भी था। इस भेद का आज तक किसी को पता नहीं था।

खैर, शादी बड़ी धूमधाम से हो गयी। मेरी सुसराल वालों ने देहज अपनी औकात से ज्यादा ही दिया। एक भैंस भी दी ताकि खा-पीकर लड़का जल्दी जवान हो जाए।

डोली लेकर हम जब अपने गाँव पहुँचे तो वहाँ भी यही चर्चा कि भई, लड़की बड़ी उम्र की है और लड़का कम उम्र का। खैर, एक दिन की ही बात थी। बहू अपने मायके चली गयी। बात आयी-गयी हो गयी।

पिता और उनके भाई सिंगापुर रवाना

शादी से निपटकर पिता और चाचों के सिंगापुर जाने के दिन झट ही आ गये शादी की खुशियाँ खत्म हो गयी और विछोह का समय शुरू हो गया। सारे घर का माहौल उदास हो गया और जाने वाली सुबह भी आ गयी। एक घर से चार भाई एक साथ ही बाहर चले जाएँ, तो दिलों को ठेंस-सी तो लगनी ही थी। हमारी दादी और माँ ने रो-रोकर सबको विदा किया। सबसे छोटा चाचा निरन्जन, मुझसे करीब 7-8 साल ही बड़ा होगा, तो जिद करके ही साथ गया। पिता उसे ले जाने के लिए राजी नहीं थे, पर सबको उसकी जिद के आगे झुकना पड़ा।

इन सबको सिंगापुर गये 8-9 महीने ही हुए थे कि द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हो गया। चाचा चन्नन सिंह, जो अकेला गाँव में रह गया था, बहुत तगड़ा था लेकिन बड़ा असभ्य भी था। दादा बूड़ सिंह को तो वह कुछ मानता ही नहीं था। कुछ समय तो खेती-बाड़ी जैसे-तैसे चलती रही पर चन्नन सिंह तो बहुत ही अकड़ने लगा। दादा ने उसे कोई भी काम कहना, उसने मुँह पर ही जवाब दे देना चला जा, चला जा, हो जाएगा काम!

दादा बेचारा उसे कान से पकड़कर तो काम करवा नहीं सकता था, दुखी होकर खुद ही काम करने के लिए चला जाता। या फिर मुझे कह देता था, 'दारा सिंह, सवेरे कुएँ से पानी निकालना! यह करना, वह करना वगैरा वगैरा।'

अब मेरे काम इतने बढ़ गये थे कि शाम के समय किस-किसी दिन तो मुझे दण्ड बैठक निकालने की फुर्सत न मिलती। साथियों के साथ खेलते जब भी दादा ने देखना, कोई न कोई काम जरूर बता देना। मैं काम करने के लिए तो चला जाता, पर अन्दर ही अन्दर दुखी भी होता था। उन्ही दिनो मैंने अपने मन में यह प्रण कर लिया था कि मैं अपने बच्चों को ऊँची शिक्षा दिलाऊँगा, जितनी वह चाहेंगे और साथियों के साथ खेलने से कभी नहीं रोकूँगा। यह प्रण मैंने हमेशा

निभाया भी है। सिवाय यह कहने के कि शिक्षा ग्रहण अवश्य करो, मैंने इन्हें कभी कुछ नहीं कहा। बल्कि कई बार तो समझदार हो गये बच्चे यह महसूस करने लगे कि हमारा पिता अच्छा आदमी है, इसने हमें कभी भी अच्छा-बुरा नहीं कहा, कभी हमें गुस्से से नहीं झिड़का। पर इन्हें मेरे बचपन में किये गये प्रण का क्या पता और साथ ही मेरे पिता ने तो मुझे कभी भी नहीं झिड़का था। मैं इसलिए नहीं कर रहा हूँ कि वह मेरा पिता है और मैं उसकी प्रशंसा करूँ, पर यह बात एकदम सच्ची है कि मेरा पिता अपने सब भाइयों में सबसे साहू है। पूरा गाँव उसको अच्छा आदमी समझता है। जवानी में अपने भाईयों में सबसे तगड़ा भी था, पर छोटों की तरह किसी से लड़ता-झगड़ता नहीं था। अब बुजुर्ग पिता को गाँव वाले हमेशा सरपंच चुन लेते हैं। नहीं तो आजकल सिवाय अकड़ के और कुछ लोगों के पास गाँवों में रहा नहीं।

पहले अकड़ का एक किस्सा सुनो। बाकी बाद में कहूँगा। दूसरा विश्वयुद्ध खत्म होते ही चाचा निरंजन सिंह और मक्खन सिंह सिंगापुर से वापस आ गये। वस्सन सिंह सिंगापुर ही रह गया। चाचा चन्नन सिंह का स्वर्गवास हो चुका था (यह भी एक हादसा है जो आगे चलकर लिखूँगा) निरन्जन सिंह जब गाँव वापस आया तो इसकी अकड़ का तो ठिकाना ही नहीं था। शराब पीकर क्लेश करना उसका शगल था। एक दिन हरानकों के डेरे में एक अकड़खान अर्जुन सिंह के साथ यह दिनभर शराब पीता रहा। हमें घर में किसी को इस बात का ज्ञान नहीं था। शाम को जब सब खाना खा रहे थे कि अचानक दूसरे डेरे के साथ वाले चबूतरे पर खड़े होकर और हमारे दादा का नाम लेकर जोर-जोर से गालियाँ निकालने लगे। उन्होंने कहा बाहर निकलो और आज दो-दो हाथ करके देख लो।

अन्धेरा बहुत था। पिता और हम डण्डे-लाठी ढूँढ़ने लगे पता नहीं क्या बात है, पर इन लोगों को चुप तो कराना ही पड़ेगा। किसी को डण्डा, किसी को कृपाण और किसी को जो कुछ भी हाथ आया, लेकर हम बाहर निकले ही थे कि अचानक एक चीख सुनाई दी, और फिर बिल्कुल चुप्पी छा गयी। यह चीख थी निरंजन सिंह की क्योंकि वह अकेला ही अन्धेरे में निकल गया और अर्जुन सिंह ने बर्छी मारी। बर्छी पेट में लगने के बजाय जाँघ की हड्डी पर लगी। बर्छी के हड्डी से टकराने की आवाज सुनकर अर्जुन सिंह ने निरंजन के हाथों पर लाठी मारी और भाग गया। भागते-भागते अर्जुन के भाईयों ने इसे दो-चार लाठियाँ और मारी। यह एक गड्ढे में गिर पड़ा और चीख निकल पड़ी। हम सब डर गये कि अर्जुन सिंह वगैरा ने निरंजन को मार दिया है। हमारे आदमी भी काफी थे। जब गालियाँ देते हुए साथ

वाले चबूतरे की तरफ हम भागे तो अर्जुन वगैरा तो चुप करके भाग गये। हम चबूतरे के चारों तरफ अन्धेरे में उनको गालियाँ देते फिरते रहे। निरजंन को भी आवाजें दीं, उधर से कोई जवाब नहीं। पिताजी चबूतरे से लगी धरती पर आगे निकल गये। हम सब वही खड़े रहे। अन्धेरा घुप्प था। घर से लालटेन मँगाकर पिता जी गड्ढों में निरंजन को ढूँढ़ने लगे तो उनको वही छिपे बैठे किसी ने नेजा मारा तो पिताजी ने शोर मचा दिया कि इधर आ जाओ। यह बदमाश तो गड्ढों में छुपे हुए हैं। पिताजी भागकर बाहर आये तो पता लगा कि नेज़ा उनके हाथ पर लग कर आरपार हो गया। उन्होंने हाथ पर कपड़ा बाँध लिया। गुस्सा सबको बहुत आ रहा था, पर करें क्या? दुश्मन मोर्चा सम्भाले बैठे थे। घर की तरफ वापस, सब चौकन्ने होकर चल पड़े क्योंकि अन्धेरे में कभी भी, कोई भी वार कर सकता था। अभी दस-पन्द्रह कदम ही चले थे कि निरंजन गिरात-पड़ता, भाला लेकर लड़ने के लिए हवेली की तरफ से आ गया—कहाँ हैं हरामजादे, मैं एक-एक को देख लूँगा!

निरंजन को देखकर सब की जान में जान आयी। पिता को लगी चोट की तकलीफ भी कम हो गयी। चलो, जिस बात का खतरा था, वह नहीं हुई! निरंजन को डाँट पड़ी और जैसे-तैसे उसे घर ले आये। सभी उसे कोसने लगे कि तूने हमारी बेइज्जती करवा दी। वे थोड़े होते हुए भी हमें चोट मार गये।

निरंजन शराब पी कर कभी-कभी यह कहता था चोंट तो साले को मैने भी मारी है!

खैर, अब मामला उठा मुकदमे का। पुलिस तो गाँव से दस मील दूर पर थी। अभी सोच ही रहे थे कि क्या किया जाए कि अर्जुन आदि की तरफ से सन्देश आ गया—'मुकदमा लड़ना है या सुलह करती है?

हमारे सभी आदमी सन्देश लाने वालों पर टूट पड़े, 'ओए, अन्धेरे में हमारे आदमी को नेजा मार कर, अब सुलह चाहते हो? अगर नेजा पेट में लग जाता तो...' पर उस समय सबको चैन मिला जब सन्देश लाने वाले ने बताया कि अर्जुन सिंह की टाँग से इतना खून बह रहा है कि अगर जल्दी अस्पताल न ले गये तो टाँग काटनी पड़ सकती है। एक समझदार आदमी ने कहा, 'भई, फिर तो चोट बराबर ही लगी हैं, क्यों बूड़ सिंह, क्या राय है?'

बाबा हमारा लड़ाई से हमेशा दूर ही रहता था, पर बेचारे के गले में पहले ही कई मुकदमे चल रहे थे, बोला, 'भई, जैसा गाँव वाले कहेंगे, कर लेंगे। दर्शन सिंह, हमारी किसी से कोई दुश्मनी तो है नहीं।' (दर्शन सिंह, अर्जुन सिंह के पिता

का नाम था और उसका हमारे बाबा से अच्छा बोलना-बैठना था।) बस, फिर क्या था, झट फैसला हो गया। चाचा मक्खन सिंह ने कहा, 'ठीक है, अलग-अलग अस्पतालों में हम-आप जाएँ। कोई भी धड़ा मुकदमा नहीं करेगा।'

अस्पतालों में पट्टियाँ हुई। पिताजी तो चार-पाँच दिन बाद घर आ गये। फिर दूसरे-तीसरे दिन पट्टी कराने जाते थे। निरंजन सिंह को जो लाठियों से चोटें आयी थी, वे शेर की चर्बी मलमल कर ठीक की गयी। पन्द्रह-बीस दिन में यह भी ठीक हो गया। लेकिन अर्जुन सिंह को चार महीने अस्पताल में रहना पड़ा और गाँव आकर भी कई महीने सहारा लेकर चलना पड़ा था।

लड़ाई के करीब तीन-चार महीने बाद पुलिस ने आकर हमारे गाँव में डेरा डाला। बड़े थानेदार ने बहुत गुस्से में कहा, 'बर्छियों और नेजों से लड़ाई हुई, आदमी अस्पताल में रहे और पुलिस को खबर तक नहीं दी। यह बहुत बड़ा जुर्म है।'

सिपाहियों ने पूरा गाँव इकट्ठा कर लिया। लोगों ने अपने-अपने विचार प्रकट किये। किसी ने कहा कि शराब पीने से लड़ाई हुई है, तो किसी ने कहा कि हँसी-हँसी में ही यह सब हो गया। पर थानेदार ने किसी की न सुनी। आखिर हमारे बाबा से पूछा गया तो उन्होंने जवाब दिया, 'जनाब, यह लड़ाई 'रानी खाँ का साला' बनने से हुई।'

थानेदार बोला, 'क्या मतलब?'

'बात तो हुजूर छोटी-सी है,' बाबा कहने लगा, 'अर्जुन सिंह हमारे गाँव का नाढूखाँ यानी रानी खाँ का साला (तीसमारखाँ) और यह मेरा लड़का बहुत समय बाद सिंगापुर से आया हैं अब यह कहता है कि इसे रानी खाँ का साला बनना है। बस, दोनों में लड़ाई हो गयी। और हमारा कोई वैर-विरोध नहीं।'

रानी खाँ के साले की बात सुनकर थानेदार हँस पड़ा और खुश होकर, आगे से ना लड़ने के लिए दोनों धड़ों को हिदायत दी।

अब है तो सारा भाईचारा ही। सन्तान तो सभी धरमू की हैं। गर्मियों के मौसम में चारपाईयाँ पेड़ के नीचे डालकर दोपहर को बैठते और सभी गपशप करते। यह लड़ाई गाँव वालों के लिए करीब सालभर मनोरंजन का मसाला बनी रही। एक दिन निरंजन सिंह और अर्जुन सिंह बातें करते-करते इस लड़ाई का जिक्र छेड़ बैठे। एक कहता कि कसूर तेरा था और दूसरा कहता कसूर तेरा था। अर्जुन सिंह ने कहा कि सूरमाओं की लड़ाई होती है लाठियों से, बर्छी मारने का क्या काम?

इस बात पर निरंजन मात खा गया और बोला, 'चल ठीक है, अब तुम जल्दी ठीक हो जाओ, फिर अपन दोनों लाठियों से ही लड़कर देख लेंगे कि कौन तगड़ा

है।'

अर्जुन सिंह ने हँस के जवाब दिया, 'ओए ना, तुम तो बिल्कुल वेबकूफ हो, मैं बेवकूफों से लड़ने को तैयार नहीं।'

इसके बाद दोनों अच्छे दोस्त बन गये।

चाचा चन्नन सिंह का खेती के काम को लेकर बाबा के साथ झगड़ा होता रहता था। पर पता नहीं मुझसे किस बात पर नाराज हो गये थे, लेकिन यह अच्छी तरह याद है कि बरसात का मौसम था और हमने चरी काटने का काम बाँट लिया। वह अपने हिस्से की चरी काटकर घर लाये और मैं अपने हिस्से की। मैं था तो छोटा, पर धीरे-धीरे काम पूरा कर लेता था। एक दिन की बात है। मैंने चरी काटकर उसका गट्ठर उठवाकर सिर पर रखवा लेता। मैंने कोशिश की कि गट्ठर को खड़ा करके खुद बैठकर सिर को बीच में लगाकर जैस-तैसे उसे उठा लूँ, लेकिन नाकाम रहा। कई बार कोशिश की, पर बात नहीं बनी। मेरी आँखों में आंसू आ गये, पर चाचा से मैंने भी नहीं कहा कि गट्ठर उठवा दो और उसने भी परवाह न की बल्कि तमाशा देखता रहा। मेरे मन में आया कि क्यों न दो चक्कर लगा लिये जाएँ!

बस, मैंने गट्ठर को दो हिस्सों में बाँटा और अब एक गट्ठर को आसानी से उठाकर गाँव छोड़ आया। दूसरे गट्ठर को उठाने पहुँचा तब तक चाचा भी अपना गट्ठर बाँध चुका था। उसने आसानी से कोली भरी और कन्धों पर गट्ठर रख लिया और फिर उचककर सिर पर रख लिया। इसके बाद वह तो यह जा, वह जा। मैंने भी दूसरा गट्ठर अपने ही ढंग से सिर पर उठाया और चल पड़ा गाँव की ओर।

आज भी वह मन्जर याद आता है तो सोचता हूँ कि किस तरह की थी वह जिन्दगी। नाराजगी भी हद से ज्यादा और प्यार भी हद से ज्यादा! ऐसे ही चाचा को जब पता लगा कि मुझे पहलवान बनने का शौक है और मैं बाकायदा बड़े पहलवानों की तरह खुराक खाकर तगड़ा होना चाहता हूँ, तो मेरे लिए, खास तोर से कनस्तर घी का देकर गये थे।

चाचा दूसरे विश्व युद्ध के समय फौज में भरती हो गये थे और कभी-कभार छुट्टी में गाँव आते थे। लड़ाई खत्म होने से कुछ समय पहले इनकी शादी होने वाली थी। छुट्टी आये तथा शादी के लिए कपड़ों से भरे दो ट्रंक (बक्से) और कुछ गहने आदि भी खरीदकर लाये थे। गर्मियों के दिन थे। रात को सारा परिवार छत पर सो रहा था। हमारे घर के पिछवाड़े वाली हवेली में कोई नहीं हरता था। उस तरफ से चारों ने सेंध लगाकर चाचा के दोनो ट्रंक चोरी कर लिये। एक पड़ोसी ने उस समय शोर मचाया जब चोर गाँव से बाहर निकल चुके थे। सब लोग रात

भर इधर-उधर दौड़-भागे पर चोर पकड़े न गये। जिस चोर ने चोरी की थी उसकी बहन हमारे गाँव में ब्याही हुई थी और पास वाले गाँव घनशाहपुरे में उसकी ननिहाल थी। चोर पर शक तब पड़ा जब घनशाहेपुरे वाली दाब में खाली ट्रंक पानी में तैरते हुए मिले। पुलिस को भी चोरों का थोड़ा-बहुत पता होता ही है। शक भी घनशाहपुरे की तरफ जाता था। अन्दाजा लगाकर चोर पर मुकदमा चलाने की नौबत आ गयी। चोर का नाम शिंगारा सिंह था। और वह शायद टाँगरे गाँव का रहने वाला था। जब उसे पता लगा कि उस पर मुकदमा बनने वाला है तो उसने धमकियाँ देनी शुरू कर दी कि आपका लड़का जो, तरसिक्का पढ़ने जाता है, उसको मार दूँगा (तरसिक्का हमारे गाँव से करीब तीन कोस यानी लगभग पाँच किलोमीटर दूरी था) मेरा छोटा भाई सरदार सिंह रन्धावा तरसिक्का के स्कूल में पढ़ता था। जब मुझे पढ़ाई से हटाया गया था तो दादा ने वायदा किया था कि छोटे लड़के को पढ़ा लेना। सरदारा जलाल उस्मान के स्कूल में चार कक्षाएं पास करके तरसिक्का हाई स्कूल में पढ़ने जाता था।

घर में डर छा गया कि कही वाकई लड़के को मार न दे। वैसे हमारे गाँव से कई और लड़के भी पढ़ने जाते थे, पर छोटे-छोटे बच्चे चोरों का मुकाबाल तो नहीं कर सकते न। चाचा चन्नन सिंह ने चोर को सन्देश भेजा कि अगर हमारे लड़के को कुछ हो गया तो मैं तुम्हारा खानदान खत्म कर दूँगा। इस धमकी से चोर का गुस्सा और बढ़ गया। उसने बच्चे को तो कुछ नहीं कहा, पर एक दिन हमारे गाँव के एक आदमी को, जो साईकिल पर दूध बेचने अमृतसर जा रहा था, घनशाहपुरा के पास ऐसा डराया था। सब लोग पेड़ों के नीचे बैठे थे कि तरलोक सिंह अन्धाधुन्ध भागता हुआ गाँव पहुँचा और आकर शोर मचा दिया कि मुझे तो टाँगरे वाला शिंगारा मारने ही लगा था। उसने तो बर्छी मारी थी पर मेरी किस्मत अच्छी थी सो मैं बचकर आ गया। मेरी साईकिल और दूध के बर्तन वहीं रह गये हैं।

सभी ने कहा कि भई, तेरी तो शिंगारा से कोई दुश्मनी नहीं, फिर तुझे क्यों मारने लगा था? इस पर तरलोक सिंह ने कहा, 'वह तो कहता है कि मैं धरमूचक्क वालों को गाँव से बाहर ही नहीं निकलने दूँगा।'

यह चुनौती सुनकर सब क्रोधित हो गये। एक-दो बुजुर्गो ने कहा, 'बात तो उसने बहुत की ग लत की है।'

फैसला यह हुआ कि चलकर शिंगारे के मामा को उलाहना दिया जाए। इस तरह होने लगा तो गुजारा नहीं होगा। पन्द्रह-बीस बुजुर्ग चल दिये घनशाहपुरा को। उनमें मेरा पिता भी शामिल थे।

पंचायत जाने के बाद चाचा चन्नन सिंह और एक दूसरे फौजी हजारा सिंह ने विचार-विमर्श किया कि कहीं चोर गाँव वालों का अपमान न कर दे, अपन भी चलते हैं। ये तीनों-चारों लोग पंचायत से थोड़ा पीछे-पीछे चल पड़े।

घनशाहपुरा पहुँचने से पहले ही एक कुआँ आता है। शिंगारा चोर वही बैठा था। पंचायत जब कुआँ पार करके गाँव की ओर बढ़ गयी तो शिंगारे को पता लगा कि यह तो उसके मामा के पास चली गयी। जोर से गाली देते हुए वह बोला, 'इनका दामाद तो यहाँ बैठा है और यह गाँव की ओर चले जा रहे है।'

यह गाली चाचा चन्नन सिंह ने सुनी तो हजारा सिंह दहाड़ पड़ा, 'ओए चन्नणा, भून दे साले को अब! किस घड़ी के लिए पिस्तौल छुपा रखा था!'

शिंगारे ने यह सुना तो सचमुच डर गया कि फौजियों के पास पिस्तौल है, तो वह पैलियों की तरफ़ दौड़ पड़ा। चन्नन सिंह उसके पीछे और वह आगे-आगे। शोर मच गया और पंचायत को भी इसका पता लग गया। सात-आठ पैलियों के बाद जब चन्नन सिंह शिंगारे के पास पहुँच गया तो उसने घूमकर बर्छी मारी पर चन्नन सिंह ऊँची छलाँग लगा गया और बर्छी उसकी टाँगों के बीच से चादर चीरती हुई निकल गयी।

चन्नन सिंह बाल-बाल बचा। दोनों की हाथापाई शुरू हो गयी। पंचायत में से पिताजी दौड़कर सबसे पहले वहाँ पहुँचे क्योंकि उनके भाई की जान को खतरा था। उन्होंने शिंगार को बालों से पकड़कर घसीटा और कहा, 'हट जा!'

इतने में चन्नन ने शिंगारे की बर्छी उठाकर उसे मारी, बस फिर क्या था, तरलोक सिंह और उसके भाई महिन्द्र ने आकर उसे मारना शुरू कर दिया। पिताजी के हटाते-हटाते भी उन्होंने शिंगारे को अधमरा कर दिया। सभी लोग जब वहाँ पहुँच गये तो बड़े-बूढ़ों ने कहा कि यह तो मर जाएगा और खून का इल्जाम लगेगा, इसलिए इसे उठाकर अस्पताल ले चलो। पर कहते हैं कि दो-चार कदम चलने के बाद शिंगारा सिंह ने दम तोड़ दिया। फिर क्या था, शिंगारा के परिवार वालों ने पुलिस को खबर दी। चार जनों सूरत सिंह, चन्नन सिंह, तरलोक सिंह और महिन्द्र सिंह पर मुकदमा चलाया गया। चन्नन सिंह को उम्रकैद की सजा हुई और बाकी तीनों को साल-साल की। बाबा ने अच्छा वकील करके अपील की, चन्नन सिंह साफ बरी हो गया, पर बाकियों की सजा बरकरार रही। जब चन्नन सिंह बरी हुआ तो पिताजी व अन्य दोनों की सजा केवल दो-दो महीने की बाकी थी। ये सारे लाहौर जेल में बन्द थे।

पूरे हिन्दूस्तान में विभाजन का जोर था। लोग एक दूसरे के दुश्मन बनते

जा रहे थे। कानून की कोई भी परवाह नहीं कर रहा था।

चन्नन सिंह के साथ अमृतसर के कुछ और सिख कैदी भी रिहा हुए थे। ये सारे जने इकट्ठे जेल के बाहर तांगे में बैठे थे। उसके बाद इन चारों की कोई खबर नहीं मिली (यह खबर अखबार में भी छपी थी)। पिताजी का कहना है कि जेल में यह अफवाह पहुँच चुकी थी कि बाहर दंगे हो रहे हैं, तो जेल कैदियों को उनके जिलों में सरकार भेजेगी अगर चन्नन सिंह आदि चाहते तो जेल में ठहर सकते थे। हाँ, अमृतसर पहुँचने में वक्त चाहे दो-चार महीन का लग जाता, पर चन्नन सिंह आदि ने जल्दी की, कहने लगे—हमें फसाद करने वालों ने क्या कहना, दौड़कर हम लोग गाँव पहुँच जाएँगे। बड़े -बुजुर्गों ने ठीक ही कहा है आदमी चाहे कितने ही इन्तजाम कर ले, होता वही है जो भगवान को मन्जूर होता है।

चन्नन सिंह के लापता होने का घरवालों को पता तब लगा जब पिताजी रिहा होकर गाँव पहुँचे। इनकी रिहाई अमृतसर में हुई थी। इनको भी घर आकर पता लगा कि चन्नन सिंह अभी तक घर नहीं पहुँचा। फिर जो उसके साथ तांगे पर बैठे थे, उनके गाँव में जाकर पता किया—वह भी नहीं आये थे। हारकर यह खबर सच मान ली गयी जो अखबार में छपी थी कि जेल से निकले सिखों को मुसलमान तांगे वाला एक ऐसी जगह ले गया जो दंगों की जड़ थी। लोगों ने तांगा अन्दर जाते हुए तो देखा था, पर वे लोग बाहर आते किसी ने नहीं देखे। सबको इस हादसे का यकीन हो गया कि हमारा चन्नन सिंह देश के बँटवारे के लिए कत्ल कर दिया गया, पर चन्नन की माँ यानी मेरी दादी कई बरस उसके इन्तजार में बैठी रही। कहती थी—मेरा बेटा फौजी है, वह जरूर किसी न किसी तरह दुश्मनों के बीच से निकल आएगा। क्या पता उसने हुलिया ही बदल लिया हो। दो-तीन साल की प्रतीक्षा के बाद चाचा चन्नन सिंह की मंगेतर का ब्याह चाचा वस्सन सिंह के साथ कर दिया गया, जो 1947 में सिंगापुर से गाँव आ गया था। मेरी दादी 1979 के आरम्भ में स्वर्ग सिधार गयी।

मेरा गौना

यह बात 1938-39 की होगी। हम गाँव के लड़के दोपहर को पशुओं को चरा रहे थे कि चन्ननकों की कुई, जिसे नाथ की कुई भी कहते थे, के पास आकर बस रुकी। यह कुई चार-पाँच गाँवों के बीच उजाड़ बियाबान में बड़े रूख के कारण दूर से ही नजर आती थी। अमृतसर से माहते को दिनभर में तीन बसें यहाँ से गुजरती थी। यह कुई पाँच-दस गाँवों से शहर आने-जाने वालों का अड्डा थीं इस रास्ते में रेत इतनी ज्यादा होती थी कि कई बार यात्रियों को बस में से उतरकर धक्का लगाकर बस को रेत में से निकालना पड़ता था। इसी परेशानी के कारण बहुत लो तो अमृतसर पैदल या साईकिलों पर जाना पसन्द करते थे। उस समय बस का इंजन कोयलों के साथ चलता था और बस का एग्जास्ट पाईप पिछली ओर ऊपर की तरफ होता था जो आटा पीसने की चक्की की तरह 'टुक ...टुक करता रहता था।

हम बस को दूर से ही देखकर खुश हुआ करते थे और कभी-कभी उस तरफ यानी कुई तक पशुओं को भी ले जाते थे, लेकिन सिर्फ पानी पीने के लिए और पशुओं को पानी पिलाने के लिए। फिर जल्दी ही वापस लौटना होता था क्योंकि यह कुई हमारे गाँव की हद से बाहर थी।

हमने अपने गाँव की हद में दूर कीकरों के नीचे बैठे हुए देखा कि रोज की तरह रुकी बस में से एक सवारी उतरी। उतरने वाले ने अपना सामान-ट्रंक व बिस्तर उठाया और हमारे गाँव वाले रास्ते पर चल पड़ा। हम में जो लड़के बड़े थे, वे बोले कोई फौजी छुट्टी आया होगा। अपने गाँव वालों को तो सब जानते थे, हो सकता है यह सैदपुर या महिसमपुर का हो। मेरे मन में आया कहीं से पिजाती की इस तरह आ जाएँ। खैर, ज्यों-ज्यों वह यात्री निकट आया तो हम सबने उसे पहचान लिया। मेरे पिताजी पैंट पहने, ट्रंक उठाये आ रहे थे। मेरी खुशी

का ठिकाना न रहा। बड़े लड़के 'ताऊ-ताऊ' कहकर उनसे मिले। दो लड़कों ने उनका सामान उठा लिया कि हम गाँव छोड़कर आते हैं। पिताजी ने पशुओं को जल्दी गाँव ले आने के लिए कहा और हम दौड़ पड़े पशुओं को इकट्ठा करने।

शाम को हमारे घर लोगों की भीड़ लग गयी। खुशियाँ ही खुशियाँ बरस रही थीं। कई बूढ़ी औरतों ने आकर पिताजी को आशीर्वाद दिया—सुरता सिंह सुख से आया है, जीता रह बेटा, भगवान उम्र लम्बी करे।

जब गाँववाले मिल मिलाकर चले गये, तब जाकर पिताजी ने घर वालों से बात की और मुझे पास बिठाकर प्यार किया। उन्होंने बताया कि सिंगापुर में लड़ाई शुरू होने वाली है, इसलिए मैं जल्दी आ गया। इस पर दादी ने कहा छोटे भाइयों को साथ क्यों नहीं लाया? तब पिताजी ने कहा—वे जानबूझकर नहीं आए। कहते थे कि अभी तो अफवाहें हैं, जब लड़ाई शुरू होगी, तब देखी जाएगी

पिताजी के आने का मेरे मामाओं को पता लगा तो वे भी मिलने आये। पिताजी का एक दोस्त था, जो उनके साथ सिंगापुर ही रहता था माहते गाँव का आत्मा सिंह। वह भी मिलने आया। उसके पास एक साईकिल थी जो वह सिंगापुर से लाया था। मुझे साईकिल चलाना सीखना चाहता हूँ। सरदार आत्मा सिंह ने मुझे साईकिल पर बिठाकर चलाने का ढंग बताया लेकिन साईकिल की काठी पर बैठकर मेरे पाँव पैडलों तक नहीं पहुँच पाते थे। इसलिए मैं साईकिल के डण्डे पर कपड़ा बाँधकर उसकी काठी बना लेता और साईकिल पर चढ़ जाता। जब भी आत्मा सिंह हमारे गाँव आते मैं उनका साईकिल से उतरने का इन्तजार करता। उन्होंने साईकिल से टाँग हटाई नहीं कि मैं कह देता—लाइए, मैं साईकिल सम्भालकर हवेली में रख आऊँ। वह समझ जाते कि साईकिल हवेली में नहीं, गाँव की सड़कों पर चलेगी और गिरेगी तो शायद हैण्डिल वगैरा भी टेढ़ा हो जाएगा—पर उन्होंने मुस्कुरा कर कहना—जरा आहिस्ता चलाना। जितनी देर तेरे पाँव काठी पर बैठकर चलाने योग्य नहीं हो जाते, उतनी देर चोट लगने का खतरा है। पर मैं दो-चार बार चलाकर ही माहिर हो गया और एक दिन मैंने सरदार आत्मा सिंह के सामने साईकिल चलाकर दिखा दी तो खुश हो गये। फिर जब मेरा मन करता, तो वे साईकिल की काठी खोलकर नीचे कर देते और मेरे पाँव पैडलों तक पहुँच जाते।

पिताजी को गाँव आए अभी साल भर भी नहीं हुआ होगा कि मेरी ससुराल वालों? ने गौने के लिए जोर देना शुरू कर दिया। पिताजी ने साफ कहा कि लड़का अभी छोटा है, गौने का क्या मतलब! आपने खुद कहा था कि शादी कर लो, गौना जब जी करे तब कर लेना। पर ससुरालवालों ने मेरे ननिहाल वालों को पता नहीं

क्या पट्टी पढ़ाई, वह तो पीछे ही पड़ गये। अन्त में पिताजी मान गये और एक दिन मुझे साईकिल पर बिठाकर मेरी ससुराल छोड़ आये। खुद तो वापस आ गये, शायद एक रात रहे थे, या नहीं, अच्छी तरह याद नहीं, पर मैं चार-पाँच दिन ससुराल में रहा था। जैसा मैंने पहले कहा है कि मेरी ससुराल वाले खाते-पीते घराने के थे, मेरी बड़ी खातिर हुई। पहले तो मुझे डर-सा लगता रहा, पर एक दो दिन बाद ही मुझे मेरी ससुराल का घर अपना-अपना -सा लगने लगा। तय किये हुए दिन मुझे और मेरी पत्नी को विदा किया गया। यह निर्णय पहले ही पिताजी से हो गया था कि आते हुए हम दोनों आ जाएँगे। (क्योंकि साईकिल जो एक थी) ससुराल वाले गाँव के बाहर तक हमें छोड़ने आये। साईकिल की काठी पिजाती नीची कर गये थे। मैं काठी पर बैठ गया और पत्नी को पीछे कैरियल पर बिठा लिया। मैं अकेला साईकिल चलाने में तो उस्ताद हो गया था, पर किसी को पीछे बिठाकर कभी नहीं चलायी थी। जब मैंने पत्नी को बिठाकर पैडल मारा तो ऐसा लगा कि साईकिल बैलगाड़ी जितनी भारी है। ख़ैर, वहाँ लोगों के बीच तो इज्जत रह गयी, पहिया भी टेढ़ा था। जैसे-तैसे साइकिल सीधी हो चली, पर बड़े रास्ते पर आकर एक मोड़ था। मोड़ मुड़ते हुवे साईकिल गिर गयी। जल्दी-जल्दी उठे कि भई कोई देख न ले। फिर बैठे, साईकिल थोड़ी ही दूर गयी थी कि फिर गिर गयी क्योंकि इस रास्ते परे रेत बहुत था। दो-चार बाद गिरने के बाद पत्नी ने कहा पैदल चलते हैं। एक छोटा-सा सूटकेस भी था बेचारी के हाथ में और गिरने गिराने से कपड़े भी खराब हो गये थे।

अभी कुछ दूर ही गये होंगे कि एक नवयुवक हमारे पास आकर खड़ा हो गया। वह मेरी पत्नी को पहचानता था। उसने कहा—क्या बात है? साईकिल तो खराब नहीं हो गई? मैंने कहा—खराब तो नहीं हुई, पर कभी किसी को पीछे बिठाकर चलायी नहीं और साथ ही इस रास्ते में रेत भी बहुत है। पक्का रास्ता होता तब तो कोई बात नहीं थी। उसे गिरने वाली बात नहीं बताई। वह कहने लगा—मैं भी तुम्हारे गाँव की तरफ ही जा रहा हूँ, जो ठीक समझो तो बचनो को मैं पीछे बिठा लेता हूँ और आप अकेले तो चला ही लेंगे। मेरे कदबुत को देखकर वह शक कर रहा था कि शायद मैं साईकिल चला ही नहीं सकता। तभी मेरी पत्नी ने कहा—नहीं, अकेले तो सही चला लेते हैं। बस, फिर क्या था। उसने मेरी पत्नी को पीछे बिठाया और साईकिल इतनी तेज चलायी कि मैं बड़ी मुश्किल उनके साथ-साथ चल रहा था। दिल से तो मैं नहीं चाह रहा था कि मेरी पत्नी उसके पीछे बैठे, पर मैं कर भी क्या सकता था!

जब रेतीला रास्ता पार कर लिया तो मैंने कहा—अब ठीक है, हम अब अपने आप चले जाएँगे, पर पत्नी ने कहा—ले चलो, गाँव अब कितनी दूर है! शायद वह डर रही हो कि रेत में गिरकर तो बच गयी थी, सड़क पर तो चोट भी गहरी लगेगी, लेकिन मुझे गुस्सा आ रहा था कि यह पराये मर्द की साईकिल के पीछे बैठकर बड़ी खुश है। खैर, रास्ता तीन-चार कोस ही था, जल्दी कट गया और हमारे गाँव के पिछवाड़े यानी गाँव की हद से थोड़ी दूर वह मेरी पत्नी को साईकिल से उतारकर चला गया।

मैंने पूछा यह कौन था? मैं तो अपनी जगह परेशान था और पत्नी अपनी जगह दुखी थी कि उसके जानने वाले क्या सोचेंगे कि लड़का कैसा ढूँढ़ा जो पत्नी को साईकिल पर बिठाकर भी नहीं ले जा सकता? उसने रूखा-सा उत्तर दिया यह हमारा रिश्तेदार था—फलाने-फलाने का लड़का। खैर, मैंने पत्नी से कहा कि तुम यहां रुको, मैं जाकर औरतों को भेजता हूँ ताकि वे आकर तुम्हें ले जाएँ। उसने कहा ठीक है। मैंने घर जाकर बताया तो माँ वगैरा बहू को बड़े चाव के साथ ले आई।

मेरे हमउम्रों को पता लगा कि मैं गौने से लौट आया हूँ। वह सारे और कुछ मेरी उम्र से बड़े लड़के मुझे समझाने लगे कि पहली रात पत्नी के साथ कैसा सलूक करना चाहिए। जो बड़े लड़के थे उन्होंने अपना-अपना और कईयों ने सुने-सुनाये किस्सों का जिक्र किया। हमारे गाँव का पहली रात का किस्सा उन दिनों बड़ी चर्चा का केन्द्र बना था। यह है भी बड़ा अजीबोगरीब और पाण्डवों की सभ्यता की याद ताजा करवाने वाला। बात इस तरह हुई—हमारे गाँव में एक घर में छह भाई थे। दूसरे नम्बर वाला, जो बड़े से लगभग डेढ़ साल ही छोटा था, सभी भाईयों में तगड़ा था। जब बड़े भाई की शादी हुई तो सर्दियों की बहार थी। विवाह वाला भाई तो मेहमानों की खातिरदारी में लाग रहा और आधी रात तक अपनी ससुराल से साथ आये आदमियों को शराब पिलाता रहा, पर उसका छोटा भाई अन्धेरे में चोरी-चोरी बहू के पास चला गया। उन बेचारी को क्या पता था। उसने समझा कि उसका पति है और यह लुच्चा विवाह वाले लड़के की बहु के पास आने से पहले ही खिसक गया।

जब वह आधी रात के बाद घर आया तो पत्नी ने पूछा हाय! हाय! आप उठकर शराब पीने चले गए थे? उसने पूछा 'चले गये थे' का मतलब मैं नहीं समझा।

पत्नी कहने लगी आप आये और मुझसे बात भी नहीं की, बस जबरदस्ती करके चले गये, यह कैसा प्यार है? और अब शराब पी के आ गये हो! वह समझ

गया—अपने भाई की करतूत, पर पत्नी को पता न लगे इसलिए कहने लगा दरअसल हवेली में मेहमान बैठे ही थे, इसलिए मैंने सोचा कि जब तक ये सो नहीं जाते, इनके पास बैठना चाहिए, इसीलिए मुझे जल्दी थी। पत्नी से परदा तो रखा पर सुना है कि पत्नी को इस बात का पता लग गया। दूसरे दिन भाईयों में लड़ाई हुई और सारे गाँव को पता लग गया और कानाफूसी होने लगी। आशिकमिजाज लोग तो यहाँ तक बातें करने लगे कि भई पहली रात का पत्नी पर इतना असर होता है कि वह सारी उम्र मर्द की तहेदिल से सेवा करती है। इसलिए उपरोक्त किस्से वाली औरत अपने पति से ज्यादा अपने देवर को चाहने लगी थी।

खैर, जो भी हुआ होगा, या किसी ने यह बात 'पहली रात' के तरजीह देने के लिए मनगढ़त ही गढ़ ली होगी। बहरहाल, लड़कों ने मुझे बड़े ही दाँव बताये कि ऐसे करना है, वैसे करना है—तभी तो औरत पर उम्र भर रौब रहता है मर्द का। मैं बड़ा भोला था। लड़कों की बातें मेरे मन पर असर कर गयी और मैं लगा सोचने।

रिवाज के अनुसार मेरी चारपाई बहू के पंलग के पास बिछाई गयी। मेरी नींद इतनी भयंकर है कि चारपाई पर लेटा नहीं कि मुझे नींद आयी नहीं। मुझे यही डर था कि कहीं मेरी आँख लग गयी तो आँख सवेरे ही खुलेगी, पर जब तक सारे घरवाले सो नहीं जाते मैं पत्नी के साथ प्यार भी तो नहीं कर सकता। बड़ी कोशिश करके अपने आपको जगाये रखा और जब लगा कि सब सो गये हैं तो मैं डरता-डरता उसके पंलग पर पहुँचा। उसने मेरा स्वागत किया। मेरा डर तो चला गया, लेकिन आशंका शुरू हो गयी क्योंकि हजार कोशिशों के बावजूद मेरे शरीर में कामदेव की उपासना न हुई। बस, फिर क्या था, पत्नी को पता लग गया कि मेरा पति अभी छोटा बच्चा है। बाहर या तेरह बरस की उस समय उम्र थी मेरी। मैं चुपचाप अपनी चारपाई पर आ लेटा और लेटते ही नींद ने आ घेरा।

दूसरे दिन दोस्तों ने हालचाल पूछने की बड़ी कोशिश की, पर मैंने किसी को कुछ न बताया। बताया भी क्या! झूठ मैं वैसे ही नहीं बोलता था। टालमटोल करके मैंने समय निकाला पर पता नहीं मेरे घरवालों को कैसे पता लग गया या उन्होंने अन्दाजा लगा लिया या बहू की तरफ से कोई इशारा हुआ होगा। पत्नी तो तीन-चार दिन रहकर मायके चली गयी, पर मेरी विषेश सेवा होने लगी। माँ ने तरह-तरह की खुराक खिलानी शुरू कर दी। मुझे जल्दी जवान करने के उपाय किये गये। किसी ने कहा कि इसे खांघड भैंस का दूध पिलाया करो। उसका बन्दोबस्त किया गया। किसी ने कहा कि भई इसे 'तेड़' बनाकर पिलाया करो। (रात को

दूध जमाकर, सुबह उसको अधरिड़का करके उसमें भैंस के दूध की सीधी धारें मारकर पीने को तेड़ कहते हैं)। अधरिड़का मुझे जबरदस्ती पिलया जाने लगा। फिर किसी ने कहा कि इसे चने की दाल रात को दूध में भिगोकर सुबह खिलाया करो। यह भी शुरू हो गया। इसपर हमारे रिश्ते में लगते एक फूफा ने कहा मैंने अपने लड़के को जल्दी जवान किया है। रात को बादाम की गिरियों को पानी में भिगोकर, सुबह उसके छिलके उतारकर फेंक दो और गिरियों को थोड़ा-सा कूटकर उसमें मक्खन और खांड (चीनी) मिलाकर खिलाया करो। रोज सौ गिरी खिलाओ, देखो लड़का कैसे जवान होता है। आखिरी खुराक शुरू हुई तो मुझे बहुत स्वाद लगी। इसका इस्तेमाल मैंने अन्य दूसरी खुराकों से ज्यादा किया। इन्हीं दिनों में मेरी सेहत ने दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की की। मैं समझता हूँ। इस खुराक के कारण मुझे आगे चलकर पहलवान बनने में काफी सहायता मिली।

पर घरवालों का दिल तो तभी खुश होता था, जब उनकी बहू खुश हो। पहले गौने को दो साल बीत गये तो मुझे फिर पत्नी को लिवाने ससुराल भेजा गया। मैं कोई चौदह-पन्द्रह वर्ष का था, पर बड़ा लगने लगा था। ताकत में भी एक शक्तिशाली आदमी से ज्यादा ताकतवर हो गया था। इस बार ससुराल के गाँव की औरतें खुश थी कि लड़का जवान हो गया है।

पत्नी को गाँव तो ले आया पर मेरा ध्यान कुश्तियों की तरफ ज्यादा तथा पत्नी की तरफ कम। पिताजी ने एक दिन कहा बेटा, तुम खुराक खाओ, तगड़े हो जाओ लेकिन हम तुम्हारे पहलवान बनने की इच्छा पूरी नहीं कर सकते। मैंने पूछा—क्यों?

उन्होंने कहा, पहलवानी तो बहुत-से लड़के करते हैं, पर बनता कोई-कोई है। और जो नहीं बनते वह तो सीधा घर का उजाड़ा ही हैं। क्योंकि खेती बाड़ी पहलवान करता नहीं, पर खुराक उसे हमेशा चाहिए बढ़िया से बढ़िया। और जब खुराक मिलती नहीं तो फिर वह बदमाश बन जाता है। इसीलिए तुम पहलवान बनने का ख्याल छोड़ दो।

मेरे मन की इच्छा तो पहलवान बनने की थी, लेकिन घरवालों के सहारे के बिना यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती थी। बादाम वाली खुराक तो तब ही बन्द हो गयी जब उन्हें पता लगा कि मेरे पिताजी दादा बनने वाले हैं। मैं सत्रह वर्ष की उम्र में यानी नाबालिग ही, एक बच्चे का बाप बन गया। लड़के का नाम रखा गया प्रद्युम्न। खुशियों व बधाइयों से घर भर गया।

मुझे पहलवानों के दंगल देखने का बहुत शौक था। हमारे गाँव के पड़ोसी

गाँव रमाणेचक का तोता पहलवान बड़ा ही फुर्तीला था। आसपास के गाँवों में जब भी मेले लगते या कुश्तियाँ होती, मैं जरूर पहुँचता था। और तोता को कुश्तियों का इनाम देने के लिए मेरे हाथ अपने आप जेब में पहुँच जाते थे। मेले में पैसे खर्च न करके मैं पहलवानों को ईनाम के तौर पर दे देता था।

एक बार हमारे गाँव के पास एक मेला लगा जिसमें पंजाब के चोटी के पहलवान शामिल हुए। उमसें मैंने एक पहलवान का इतना सुन्दर शरीर देखा कि मेरे दिलोदिगाम पर उसका जादू जैसा असर हुआ। पहलवान का नाम कौला था और वह भागोवाल गाँव का रहने वाला था। कुदरत ने इस पहलवान के शरीर को बड़े मन से बनाया होगा।

घर लौटकर देखा कि छोटा-सा प्रद्युम्न चारपाई पर पड़ा है। ऐसा लगा—जैसे बड़ा होकर बिल्कुल कौला के शरीर जैसा इसका शरीर होगा। दिल से वायदा किया कि मैं तो नहीं बन सका पर इस लड़के को जरूर पहलवान बनाना है।

कभी-कभार तोता पहलवान ही मेरे पास आता था। वह जब भी आता, घर वालों को चिंता लग जाती कि अब दूध की खैर नहीं, खाने के साथ मुर्गा वगैरा भी बनाना पड़ेग। मुझे घर की पतली हालत का एहसास था, पर मेरा इकलौता शौक पहलवानों की सेवा करना तथा उनके साथ मिल-बैठना ही था। तोता ने मुझे कई बार कहा कि जितनी तुझमें ताकत है, अगर तू पहलवानी का हुनर सीख ले तो बड़ी आसानी से कुश्ती लड़ सकता है। मैं उसे अन्दर की बात न बताकर ऐसे ही हँस पड़ता—यार, खेती करने वाले जाट से कहाँ पहलववानी होती है!

खेती में ज्यादा काम करने वाले को गाँव में बड़ा मान मिलता है, सब उसकी चर्चा करते हैं तथा इज्जत भी।

सन् 1947 की गर्मियाँ थी। और गेहूँ की कटाई चल रही थी। उन दिनों गाँवों में सबसे ज्यादा गेहूँ काटने वाले को एक तरह चैंपियन गिना जाता था। मैं शाम को सिर धोकर बालों को सुखा रहा थां सूरज डूबने ही वाला था कि मेरे दादा का हमउम्र एक विरधदीन मुहम्मद लुहार कहने लगा—काका, कटाई के दिन हैं और तू खाली घूमता फिरता है। तेरे बुजुर्गों के गाँव में गेहूँ काटने के बड़े चर्चे थे, तू भी कोशिश करता अपना नाम पैदा करने की।

मैंने कहा—बाबा, मैं आज गेंहू काटकर ही आया हूँ।

कहने लगे—अच्छा, कितनी गेहूँ काटी? मैंने जवाब दिया कि दो बीघे! इसपर बाबा बोला, कौन से दो बीघे भाई?

गाँव के हर आदमी को गाँव की सारी जमीन का पता होता है, क्योंकि इनके

सामने फसल बोयी जाती है, पौधे उगते हैं, परवान चढ़ते हैं और दाना पड़ता है। और फिर इनके सामने कटाई होती है। मैंने कहा बाबा एक बीघा तो मैंने खाने के समय तक काट लिया था। (हमारी एक पैली का नाम ही एक बीघा था।) काटते-काटते मैं तब तक नहीं उठा, जब तक पूरा बीघा न काट डाला।

बाबा कहने लगे—शाबाश, पर दूसरा कौन-सा बीघा?

मैंने कहा—बाबा, बीघा तो रेड़वाली पैली में से काटा है। बाबा हैरान होकर बोला हैं! यह तूने कैसे-किस तरह किया? और कितनी बोरियाँ भरी

मैंने कहा—बाबा, बोरियाँ तो कल पिताजी आदि भरेंगे, मैं तो कटाई करके ही आ गया। इसपर वह कहने लगे भई, पचास-साठ तो भर ही जाएँगी। ले भई लड़के, तूने रूपा सिंह का नाम रख लिया है।

वाकई अगले दिन 55 बोरियाँ भरी। हो सकता है कि लड़के का रौब जमाने के लिए पिताजी ने बोरियाँ छोटी भरी हो, पर बड़ी भी भरते तो 50 से कम न होती। आमतौर पर इतनी गेहूँ उस जमाने में चार आदमी काटते थे। हमारे गाँव के एक मजहबी सिक्ख का चने की कटाई में बड़ा नाम था। मेरे साथ शर्त लगाकर गेहूँ काटने की उसकी बातचीत चल रही थी। जब उसे इसका पता लगा तो वह जिदबाजी छोड़ गया और मैं बिना मुकाबले ही चैंपियन बन गया। हालाँकि कई बार देखा गया है कि अखाड़े में जीतने वाले मैदान में जाकर पस्त हो जाते हैं। खैर, जो भी हुआ। अपना खेती करने में अव्वल नम्बर आ गया। और यह था मेरा खेती करने का आखिरी साल।

मेरी पहली सिंगापुर-यात्रा

सन् 1947, गेहूँ की कटाई के बाद, गर्मी का मौसम, वर्षा ऋतु से हर वर्ष की भाँति हम बैलगाड़ी में गाँव से खेतों की ओर खाद ढो रहे थे। चाचा निरंजन सिंह मुझे से जिद कर खाद के टोकरे उठा रहा था।, पर कुछ समय सिंगापुर रहने के कारण उसका हौसला पस्त हो गया लगात था। ऊपर से कड़कती दोपहर और नीचे खाद की भड़ांस। जैसे-जैसे उसे खोदें, खाद आग की तरह जल रही थी। बैलगाड़ी के दस-पन्द्रह चक्कर लगाने के बाद चाचा आदि को सिंगापुर की याद आने लगी। कहने लगे—मैं वापस सिंगापुर चला जाऊँगा। यहाँ तो मिट्टी के साथ मिट्टी होना पड़ता है। मैंने सोचा काम करके थक गये हैं, इसीलिए सिंगापुर जाने की बात कह रहे हैं क्योंकि सिंगापुर से लौटे अभी इन्हें सात-आठ मास ही हुए थे और मेरा यह ख्याल निकला भी ठीक।

खाद ढोने के कुछ दिन बाद मेरी माँ के साथ लड़ाई हो गयी। पिताजी कही बाहर गये हुए थे। लड़ाई इतनी गम्भीर हो गयी कि जब पिताजी वापस गाँव आए तो मुझे घर से अलग करने की बातें होने लगी। दूसरे दिन जब मैं बाहर से घर आया तो हमारे सोने वाले कमरे के एक कोने में गेहूँ पड़ा देखा। मैंने कहा—गेंहू भण्डार में से निकालकर यहाँ क्यों रखा है? इसपर मेरी पत्नी ने बताया कि तुम्हें घरवालों ने अलग कर दिया है तथा यह गेहूँ तुम्हारे हिस्से की है। या तो बोरियाँ खरीदकर भर लो या भण्डार बनवा लो।

एक बार तो मेरी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया अलग होकर मैं करूँगा क्या? जमीन कोई है नहीं, खेती के अलावा मुझे कोई काम आता नहीं। पुश्तैनी जमीन में से तो मुझे आधा बीघा भी नहीं मिलेगा क्योंकि पिताजी के हिस्से एक बीघा आती थी। मैं और सरदार सिंह दो भाई हमें आई आधा-आधा बीघा, वह भी तब अगर पिताजी अपना हिस्सा न लें। पर मैं कर भी क्या सकता था, मैं स्वयं तो अलग नहीं हुआ था, मुझे अलग कर दिया गया था। अगर अकेला होता

तो भी कोई बात नहीं थी। अब एक पत्नी और एक लड़का, परिवार का गुजारा किस तरह होगा? मन में आया कि क्यों न सिंगापुर जाकर किस्मत आजमाई जाए। जब घरवाले सभी वहाँ से कुछ न कुछ कमाकर लाते हैं, तो मैं भी कमा लूँगा।

घरवालों का मेरे हिस्से के दाने अलग करेन का मतलब धमकी थी या वाकई अलग करने का विचार था—मुझे नहीं पता, पर मैं लड़ाई की माँ से माफी माँगने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं था और इस बात को चेतावनी मानकर पत्नी से सलाह की, कि मैं भी सिंगापुर जाऊँगा और जब तक कुछ बन न जाऊँ, वह अपने मायके रहेगी। निर्णय हो गया। मेरी ससुरालवालों को पता लगा तो उन्होंने मुझे कुछ जमीन देना चाही। हमारे गाँव की तरफ उनकी पाँच-छह बीघे जमीन थी। कहने लगे तुम यह जमीन ले लो और खेती करो। मैंने कहा नहीं, अब तो सिंगापुर जाकर ही किस्मत आजमानी है। हाँ, आप मुझे सिंगापुर जाने के लिए किराया उधार दे दो।

मेरी सास ने मुझे 300 रुपये दिये। मैंने चाचा निरंजन सिंह को सिंगापुर जाने के लिए तैयार कर लिया। उसका आधा मन तो बना हुआ था ही, बाकी मैंने उसपर जोर डालकर उसे मना लिया। क्योंकि मैं अकेला तो परदेश जा नहीं सकता था। धरमूचक्क की हद से बाहर सिर्फ एक-दो बार गया होऊंगा वह भी अमृतसर शहर, तरनतारन और जालन्धर। इसके अलावा मेरे वास्ते सारी दुनिया परदेश थी और परदेश में बिना किसी ठिकाने के कहां पैर टिक सकते हैं!

चाचा निरंजन सिंह को सिंगापुर के बारे में जानकारी थी, इसलिए उसे ले जाना बेहद जरूरी था। जब माता-पिताजी को पता लगा कि ये तो सचमुच ही सिंगापुर जाने के लिए तैयार हो गये हैं और उनसे पैसे आदि भी नहीं माँगे तो बुटारी स्टेशन पर पिताजी मेरे पीछे आये और चाचा को कहने लगे—परदेश का मामला है, मैं तीन-चार सौ रुपया लेकर आया हूँ, इसे कहो कि ले ले।

मैंने चाचा से कहा—जितना मेरा खर्च होगा, जो आपने बताया था, उसका बन्दोबस्त मैंने कर लिया है। और पैसों की मुझे जरूरत नहीं। पर फिर भी, पिताजी के जोर देने से, अब तो याद नहीं पर वह कुछ न कुद पेसे दे गये थे। वह समझते थे कि चाचा के खर्चे पर जा रहा है। खैर, हम गाड़ी में चढ़े और दो दिन में मद्रास पहुँच गये।

हमें सिंगापुर जाने से दादा ने रोकने की कोशिश की। कहने लगे देश के हालात अच्छे नहीं हैं। सुना है अमृतसर के शरीफपुरा क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमानों में लड़ाई हुई है। बहुत लोग मारे गये हैं हरिमन्दिर तो जत्थेदार ऊधम सिंह नागोकियों ने बचाया है, वर्ना मुसलमानों ने उसे पकड़ लेना था। साथ ही चन्नन सिंह के

साथ जो हादसा गुजरा है, उसके जख्म भी अभी नहीं भरे और अब तुम चल पड़े होक! इन बातों से चाचा निरंजन सिंह का मन थोड़ा-सा डोलता था कि अगले साल चलेंगे, तो मुझे घबराहट होने लगती थी कि कहीं जाने का इरादा न टल जाए! मैं चाचा को उनके बहादुर और निर्भय होने की याद दिलाता था। बात यह कि जब तक गाँव से चलकर रेलवे स्टेशन पर नहीं पहुँचे, कार्यक्रम बदलने का डर बना ही रहा। लड़ाई-दंगों के कारण ही हमने कलकत्ता के बजाय मद्रास से जाहज पकड़ने का इरादा किया था।

मद्रास पहुँचकर हम एक सराय में ठहरे थे। वहाँ सिंगापुर जाने वाले कई यात्री और थे। हमें लगभग एक महीना वहां जहाज का इन्तजार करना पड़ा था। उन दिनों एक परमिट मिलता था। परमिट हासिल करने के लिए फार्म भरकर देना पड़ता था। फार्म पर मेरा नाम अंग्रेजी में कौन से शब्दों में लिखा जाए, इससे फार्म भरने वाला परेशान था और मैं भी थोड़ा दुखी था। मेरा नाम ऐसा क्यों रख गया जिसे लिखने में तकलीफ हो रही है। मैंने उसे पंजाबी में लिखकर समझाया और कहा कि भई पंजाबी में तो कोई तकलीफ नहीं पर वह भला मानस कहे कि दारा सिंह या धारा सिंह। आखिर में मैंने कहा कि भई जो आपको अच्छा लगता हो, वही लिख दो, पर मेरा नाम दारा सिंह है।

खैर, उसने हमें परमिट बनवा दिए और हम 'रजूले' जहाज की प्रतीक्षा करने लगे। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, हमें चिन्ता होने लगी कि कही पैसे ही न खत्म हो जाएँ! उन दिनों मैंने एक किस्सा पढ़ा था जानी चोर का। उसका मुझ पर इतना असर पड़ा कि मैं तो अपने आपको जानी चोर से भी ज्यादा चतुर समझने लगा और चोरी करनी बुरी बात है, इसका एहसास ही खत्म हो गया। जानी चोर का किस्सा पढ़कर और उसके कारनामे जानकर मैं तो चोरों के भी कान कतरने को तैयार हो गया। कहते हैं बिधीचन्द गुरु जी को मिलने से पहले नामी चोर था, तभी तो गुरु जी ने बिधीचन्द को घोड़े लाने को कहा था।

खैर, जानी चोर की तरह मैंने भी हाथ की सफाई करने का विचार बनाया। हमारे पड़ोस में एक पंजाबी सरदार सोता था। पहली बोहनी में उसकी जेब साफ करने का ख्याल आया। गाँव में खरबूजे, बेर या अमरूद तोड़ने की चोरियाँ तो साथियों के साथ मिलकर की थी, पर किसी की जेब से पेसे निकालने का पहला मौका था। सोये हुए सरदार की जेब से बटुआ निकालकर देखा बटुआ खाली था। फिर उसकी किताब देखी, उसके पन्नों के साथ उसने नोट नत्थी किये हुए थे। शायद चोरी हो जाने के डर से उसने पन्नों के साथ उसने नोट नत्थी किये हुए

थे। शायद चोरी हो जाने के डर से उसने हर तीसरे-चौथे पृष्ठ के साथ एक या दो रुपये के नोट रखे हुए थे। मैंने उसके कम से कम आधे नोट निकाल लिये और बाकी रहने दिये। पन्द्रह-बीस रुपये तो जरूर होंगे। दूसरे दिन वह बेचारा बिस्तर को बहुत उलटता-पलटता रहा पर उसने किसी से पैसे गुम हो जाने की बात न की। मेरा हौसला और बढ़ गया। दो-तीन दिन के बाद एक साधु जैसे आदमी का झोला, उसके सिरहाने से उठा लिया। लेकिन उसमें से सिवाय धोती और फटे-पुराने कपड़ों के कुछ न निकला। इतने में जहाज आ गया और हम सब जहाज पर चढ़ गये।

जहाज का पूरा सफर नौ दिन का था। एक रात सोते हुए मैंने सोचा कि जानी चोर मैं तभी बन सकता हूँ जब पास में सोई एक औरत के गले से उसका हार उतार लूँ। जहाज के डैक पर सारे यात्री कतार बनाकर अपने-अपने बिस्तर बिछाकर सो जाते थे और ये बिस्तर स्थायी रूप से सारे सफर में लगे रहते थे। हमारे सिरहाने वाली कतार में एक औरत थी, जिसका हार उतारने के बारे में मैंने सोचा था। बिसतर से थोड़ी दूर लेटे-लेटे ही हार उतारने के बारे में मैंने सोचा था। बिस्तर से थोड़ी दूर लेटे-लेटे ही हार उतारने की कोशिश की जा सकती थी। मैंने मौका देखकर अपना काम शुरू किया, पर उसने करवट बदल ली। दूसरी तरफ से कोशिश की तो उसकी आँख खुल गयी। उसने 'चोर चोर' करके शोर मचा दिया। सभी लोग जाग गये। उसने मुझे देखा नहीं था, केवल हाथ ही महसूस किये थे जो उसके गले का भार हल्का करने लगे थे। सभी लोगों के साथ मैं भी जागा, पर अन्दर से मेरा शरीर कांप रहा था। पता नहीं उसे किस पर शक हुआ होगा क्योंकि आसपास बहुत लोग थे।

दूसरे दिन जहाज पर लोग चोरी वाली बात को बहाना कहकर दूसरी ही बात की चर्चा करने लगे कि छेड़छाड़ हुई है। मैं अपने आपको इतना फटकार रहा था कि जीने को दिल नहीं कर रहा था। मेरे कारण एक इज्जतदार औरत का अपमान हो, यह बात बरदाश्त नहीं हो रही थी। और सच मैं लोगों को बता नहीं सकता था। मैंने जानी चोर के किस्से को फेंका समुद्र में और मन में प्रण किया कि चोरी जैसी आदत का फिर से ख्याल भी नहीं आने देना। साधु के झोले वाली और सरदार के नोटों वाली बात जब याद आती है तो मैं सोचाता हूँ कि वह आदमी मैं ही था या कोई और था? बाद में जब संसार का थोड़ा बहुत ज्ञान हुआ तो पता लगा कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कथन में कितनी सच्चाई है कि कल का चोर आज का साधु बन सकता है और आज का साधु कल का चोर! उनकी यह बात बिल्कुल सच्ची

है। कभी-कभी मैं यह भी सोचता हूँ कि अगर बाबा शाम सिंह ने, जिन्होंने हमें सच बोलने को प्रेरित किया, वह चोरी जैसी बुराईयों से दूर रहने की प्रेरणा भी देते तो शायद मैं ये चोरियां न करता और उस औरत की इज्जत पर हमला न होता तो मैं शायद चोर ही बना रहता खैर, बात यहाँ खत्म होती है कि मन का पता नहीं कब और किस वक्त क्या करता है।

सिंगापुर पहुँच हम चाचा के एक दोस्त के पास कोई हफ्ता भर रुके होंगे कि एक दिन दोपहर का खाना खाकर सोये हुए थे कि चाचा के दोस्त तथा दो अन्य लोगों ने हमें जगाया और कहा कि जल्दी करो एक काम है। हम उठे तो गली में फौज का एक ट्रक खड़ा था। पेट्रोल की केनों से भरा ट्रक हमें खाली करने को कहा गया। हम पाँच-छह जनों ने हाथों हाथ केनों से भरा ट्रक खाली करके हवेली में चिनकर लगा दिया और ऊपर से तिरपाल ढंक दी।

ट्रकवाला जल्दी-जल्दी चाचा के दोस्त से कुछ लेन-देन करके चलता बना। मुझे तब पता लगा जब मुझे दस डालर, इस आधा घण्टा काम करने के मिले। यह चोरी का माल था और इस तरह का धन्धा यहाँ आम होता है। मैंने चाचा से कहा–हम किसी दूसरी जगह चलते हैं। आज तो अनजाने में यह भूल हो गयी और आगे अगर इनका साथ देंगे तो चोर बनेंगे, और साथ न दिया तो दुश्मन! हम अभी असमंजस में थे कि सन्देश आ गया। हमें सिंगापुर से कोई तीस-चालीस मील दूर एक टापू पर नौकरी मिल गयी है। यह एक ड्रम बनाने का कारखाना था जिसमें हजार-दो हजारआदमी काम करते थे और उनके रहने के लिए बैरक बने हुए थे। मशीनों पर काम करना पड़ता था। खेती करने वाले को यह काम बड़ा सुविधापूर्वक लगता था, पर नौकरी पेशा लोगों के लिए बहुत मुश्किल लगता था। तीन-चार महीनों में मैं सभी का चेहता बन गया था।

माझे, मालवे और दुआबे के लोग इस कारखाने में काम करते थे। बड़ा माडर सरदार धन्ना सिंह दुआबा का और छोटा माडर सरदार हजूरा सिंह मालवा का था (माडर मजदूरों के अफसर को कहते हैं।) अगर किसी ने आठ घण्टे की मजदूरी के आलवा अतिरिक्त काम करना हो तो इन्हीं अफसरों की मार्फत कर सकता था क्योंकि अतिरिक्त काम करने के ज्यादा पैसे मिलते थे। इसलिए मजदूर इन माडरों की खुशामत भी करते थे। रविवार छुट्टी का दिन होता था, लेकिन ओवर टाइम करने वालों को रविवार को भी काम दिया जाता था। मुझे दोनों माडर खासतौर पर रविवार को भी काम दे देते थे। एक तो मैं काम ज्यादा खींचता था, दूसरा कुश्ती करने वाले लड़कों को वैसे भी प्यार करते थे। सरदार धन्ना सिंह कहता

कि जवान! यही काम करके क्यों जिन्दगी गलाता है। पहलवानी कर, अगर करे तो तुम्हें खुराक वास्ते पैसे इकट्ठे कर देते हैं। मैं उनकी बात हँसकर टालता था, पर अन्दर से आतमा की आवाज आती थी कि काश! मुझे पहलवानी करने का मौका मिलता!

एक दिन दोनों माडरों ने चाचा को भी कहा कि भई, लड़का इतना सख्त काम करेगा तो सेहत नहीं बन सकती। इसे कोई आसान-सा काम ढूँढ़ दो और पहलवानी करवाओ। पहलवानी वाली बात पर तो ज्यादा गौर नहीं किया गया, पर आसान काम ढूँढ़ लिया गया। हमारे गाँव का, खानदान में ही एक चाचा लगता था गंगा सिंह। वह सिंगापुर से 10 मील दूर मिलिट्री कैंप न्यूशन में काम करता था। उस स्थान पर खाने-पीने की चीजों का एक स्टोर था, उसकी सुरक्षा के लिए एक आदमी की जरूरत थी। सिर्फ रात को सोने का ही काम होता था। एक दिन फौजी जवान शराब पीकर बोतलें उठाने आ गये थे, इसलिए एक आदमी की जरूरत पड़ गयी थी। चाचा गंगा सिंह ने मुझसे कहा—तू मेरे पास आजा, जितने यहाँ कारखाने में मिलते थे, उससे थोड़ा कम ही मिलेंगे, पर काम भी तो आसान है। मैंने सोचा बात तो ठीक है। अगर दाँव लग गया तो दिन का काम कहीं और ढूँढ़ लेंगे। सो, मैं चाचा गंगा सिंह के पास न्यूशन कैंप चला गया।

सरदार गंगा सिंह अपना खाना खुद बनता था। मैंने भी उसके साथ खाने में हिस्सा पा लिया, पर मुझे खाना बनाना नहीं आता था। दो-तीन सप्ताह बाद गंगा सिंह कहने लगे, भई, मान लो मैं कहीं और चला जाऊँ और तू यहाँ पर अकेला ही रहे तो तेरा खाने का बन्दोबस्त क्या रहेगा? मैंने कहा परदेश में आकर आदमी को सबसे पहले यह करना चाहिए कि वह खाना बनाना सीखे, फिर वह कभी भूखा नहीं मरता।

मैंने कहा कि मुझे सिखाओ, मैं तैयार हूँ। उन्होंने पहले दिन मुझे चावल बनाने सिखाये और फिर रोटियाँ और सब्जी। सदा खाना बनाना मैंने चाचा गंगा सिंह से सीखा और फिर रोटियाँ और सब्जी। सादा खाना बनाना मैंने चाचा गंगा सिंह से सीखा और पहलवानी ढंग का आगे चलकर अपने उस्ताद हरनाम सिंह वगणीये से। फिर तो हाथ से खाना बनाने का चस्का जैसा पड़ गया। अगर कहीं किसी के घर भी जाएँ तो मुर्गा वगैरा आप ही बना लेते थे।

न्यूशन कैंप में मैं 1948 में गया था। सारा दिन निठल्ले एक मोची के अड्डे पर बैठे गपशप करते रहना। यह मोची जालन्धर जिले से गया था। इसका नाम था हरनाम दास और पंजाब में पहलवानी करता रहा था। पहलवानी रास नहीं आई

तो कमाई करने सिंगापुर आ गया। फौजियों के जूते गाँठने का इसके पास इतना काम था कि सारा दिन सिलाई करना या कीले ठोंकने में लगा रहता। इसे पहलवानी की बातें सुनाने का शौक था तो मुझे सुनने का।

एक दिन हरनामदास ने छोटीसी पाकेट-बुक दिखायी जिसमें पहलवानों के चित्र थे। हरबन्स सिंह, करतार सिंह, किंगकांग, वोंग येंग चांग, सरदार खान और जरा खान के अलावा और भी कई पहलवानों के चित्र थे। मैंने कहा तुम यह किताब मुझे दे दो। कहने लगा—कुछ दिन तुम अपने पास रख लो। पर बात सुनो, अगर तुम्हें पहलवानी का इतना शौक है तो खुद पहलवान क्यों नहीं बनते? हाजमा भी तुम्हारा बहुत बढ़िया है। दो-चार बार इकट्ठा खाना खाने के बाद उसने मेरे हाजमे का अनुमान कर लिया था। मुझे तो यह भी पता नहीं था कि पहलवान के लिए अच्छा हाजमा होना बहुत जरूरी होता है। मैंने कहा—मेरी इच्छा तो बहुत थी पहलवान बनने की पर मौका नहीं मिला। साथ ही, अब तो उम्र भी ज्यादा हो गयी है। उसने कहा कि उम्र तो तुम्हारी अभी ज्यादा नहीं हुई। दाढ़ी आनी शुरू नहीं हुई। मैंन कहा कि दाढ़ी का तो पता नहीं, पर उम्र मेरी करीब 19 साल हो गयी है।

हरनामदास ने कहा उम्र तो ज्यादा नहीं। हाँ, मैं पहले तेरे साथ कुश्ती करके देखूँगा कि तेरा शरीर सुगठित है या खोखला, क्योंकि देखने में तो तुम छोटे-मोटे पहलवान से तगड़े लगते हो। दो-चार दिन में मैं तुम्हें बता दूंगा कि तुम पहलवान बन सकोगे या नहीं। हमने वहीं कैंप में खाली जगह देखकर अखाड़ा बना लिया।

इससे पहले मैं लड़ता रहा था ताकत के जोर पर, कुश्ती का ढंग बिल्कुल नहीं आता था। अखाड़े में पहली बार बाकायदा हरनामदास के साथ लड़ा। हरनामदास कस्बई पहलवान था, एक सीधे-सादे जाट को वह क्या समझता था। पहले दिन दो-चार बार पकड़ने के बाद कहने लगा अब बस करते हैं, शुरू-शुरू में नसें खिंच जाती हैं। मैंने कहा कि ऐसी तो कोई बात नहीं है, मैं गाँव के लड़कों के साथ बहुत कुश्ती लड़ता रहा हूँ। चार-पाँच दिन बाद हरनामदास कहने लगा—भई, तुझमें ताकत तो बहुत है। मैं तो तुम्हें दांव से रोक लेता हूँ, वैसे शरीर से तुम ताकतवर हो। अब ऐसे करो कि बाल कटवा लो क्योंकि अखाड़े में प्रेक्टिस करते हुए जूड़ा हर पल खुल जाता है।

मैंने कहा—अभी दो-चार महीने इसी तरह प्रेक्टिस करते चलें, फिर कटवा दूँगा। वह कहने लगा फिर कटवाने हैं तो अब क्यों नहीं कटवा देते! इसपर मैंने कहा—अगर मैंने बाल कटवा लिये और पहलवान भी न बन सका तो मेरे साथ वही बात होगी कि धोबी का कुत्ता ना घर का ना घाट का!

लेकिन हरनामदास ने सप्ताह भर और प्रेक्टिस कराके जिद पकड़ ली। कहने लगा—जब तक तुम बाल नहीं कटवाओगे तो मैं प्रेक्टिस ही नहीं करूँगा और वाकई दो दिन वह अखाड़े ही नहीं आया। मैंने चाचा गंगा सिंह से सलाह की। उन्होंने कह कि जा निरंजन सिंह से भी पूछ लें तो फिर कटा लेना। मैंने निरंजन सिंह को कहा कि भई अगर खुराक खिलाने में मेरी मदद करनी है तो मैं बाल कटवाऊँ, नहीं तो मुझे अकेले की तनख्वाह से तो पहलवानी होनी नहीं।

निरंजन सिंह ने कहा—जा तू अपना शौक पूरा कर, मेरे कौन से बच्चे रोएँगे। मैं अपनी तनख्वाह की सारी बचत तुझे दे दिया करूँगा। बस, अन्धा क्या चाहे, दो आँखें! मैं सीधा हरनामदास के पास गया और कहा कि चाचा तो मान गया, पर एक बार घर चिट्ठी लिखकर बाल कटवाने के लिए पूछ लेना चाहिए। वह कहने लगा—अगर तुम बारी-बारी सबसे पूछने लगा तो फिर हो गयी तेरी पहलवानी!

इसपर मैंने कहा फिर भी, इतनी बड़ी बात है...

उसने कहा—छोड़ो यार। और एकाएक पगड़ी उतारकर एक टूटी हुई कैंची से मेरे बाल काट दिये। ऐसे ऊबड़-खाबड़ कटे कि मुझे कैंप के बाहर जाकर नाई से उस्तरा फिरवाना पड़ा। जब हजामत करवाकर मैं नल के नीचे नहाने बैठा और ठण्डा-ठण्डा पानी सिर पर पड़ तो उसकी एक अजीब ही सनसनी महसूस हुई जो मुझे आज तक याद है। घर पत्र द्वारा सूचना भेजी तो माँ ने बड़े गिले-शिकवे भरी चिट्ठी भेजी। लिखा घी लगा-लगाकर तेरे बाल बड़े किये थे। तू ऐसे कर, अपने कटे हुए बाल हमें भेज दे। मैंने जवाब में लिख कि बात तो हरनामदास ने काटकर उसी समय टोकरी में फेंक दिये थे। माँ की बात मेरे मन को लगी। मुझे स्वयं पर गुस्सा आया। सोचा—अगर बालों को सम्भालकर रख लेता तो अच्छा होता, पर अब तो कुछ नहीं हो सकता था।

अब कुश्ती का अभ्यास करने के बाद मिनट भर में शरीर से मिट्टी उतर जाती थी और मैं खुश था कि हरनामदास मेरा अभ्यास अब सही और ठीक तरह से कराएगा। पर उस बाप के बेटे ने दस-पन्द्रह दिन बाद साफ जवाब दे दिया। कहने लगा—दरअसल मैं तुम्हारे साथ अभ्यास करे इतना थक जाता हूँ कि मुझसे सारा दिन काम नहीं होता। ऐसे करते हैं—मेरा एक दोस्त है, बहुत बढ़िया पहलवान। तुम्हें उसका शागिर्द बना देते हैं। वह खाली भी है, सो तेरी प्रेक्टिस करा दिया करेगा। हम उस पहलवान के पास गये। उसका नाम ईश्वरदास था और वह न्यूशन कस्बे में रहता था। हरनामदास के भाईचारे में ही था। उसने दो दिन मेरे साथ अभ्यास किया और किनारा कर गया। क्योंकि वह मुझसे कमजोर था और लोगों

के सामने अपमान न हो इसलिए अभ्यास कराने से हट गया। मेरे लिए तो अब पूरा शहर ही निकम्मा हो गया। पूछते-पूछते पता लगा कि न्यूशन से कोई तीन-चार मील दूर एक कस्बे में एक मलयालम पहलवान है।

मैं बस में बैठा और उसके पास पहुँच गया। उसका नाम शायद जनार्दन था। वह बड़े उत्साह से मिला। मेरी सारी बातीचीत सुनकर बोला—मैं सिंगापुर में एक दफतर में काम करता हूँ, पर मैं शाम के समय तुम्हारा अभ्यास करवा दिया करूँगा।

मैंने कहा कि ठीक है, न्यूशन से सीधी बस यहाँ आती है, मैं पहुँच जाया करूँगा। अखाड़ा उसका छोटा-सा ही था। उस पहलवान ने लगातार दो महीने मेरा अभ्यास करवाया, पर फिर उसे हिन्दुस्तान जाना पड़ गया। मेरा काम फिर ठप हो गया। इन्हीं दिनों में चाचा निरंजन सिंह ने गंगा सिंह वाला काम आकर सम्भाल लिया और गंगा सिंह फोर्ड कम्पनी में काम पर लग गया। मैं और निरंजन सिंह इकट्ठे रहने लगे। जब अभ्यास कराने वाला कोई न मिला तो निर्णय यह हुआ कि सिंगापुर जाकर अभ्यास किया जाए पर नौकरी का भी सवाल था निरंजन सिंह ने कहा तूं सिंगापुर चला जा, मैं दोनों नौकरियाँ करता रहूँगा।

सिंगापुर में एक अखाड़ा था पहलवान जोगिन्दर सिंह सुरसिंघिए का उसके पास हम गये तो वह बड़ा खुश हुआ। एक लड़का मोहन गत्ते के गोदाम में काम करता था। जोगिन्दर और मोहन एक साथ रहते थे। एक नाले के किनारे अखाड़ा बना रखा था और गोदाम वालों ने मोहन को रहने की जगह दे रखी थी। मैंने भी इन दो पहलवानों के साथ जाकर रोटी में हिस्सा पाया। एक स्थान पर रहकर पाँच छह महीने अभ्यास किया। जोगिन्दर हमसे ज्यादा बेहतर पहलवान था। मैं और मोहन बारी-बारी उसके साथ अभ्यास करके फिर इकट्ठे उससे अभ्यास करवाया करते थे। उसका खाना भी हम बनाते थे और मालिश भी किया करते। यह पहलवान दोनों तरह की कुश्ती लड़ता था। देशी भी तथा फ्री स्टाइल भी, पर मैं जब इससे फ्री-स्टाइल सीखने की इच्छा जाहिर करता था तो यह जवाब देता था कि पहले तगड़ा हो, फिर सीखना फ्री-स्टाइल । पांच-छह महीने इस पहलवान के साथ बिताये , यह खुद तो हर सप्ताह फ्री-स्टाईल कुश्ती लड़कर पैसे बना लेता था, पर हमें तो खुराक अपने पास से ही खानी पड़ती थी। एक दिन हमारा भी आएगा, इसी आशा में हम पहलवान की मालिश करते जा रहे थे।

एक दिन शाम को हम दण्ड लगा रहे थे कि एक टैक्सी अखाड़े के सामने आकर रुकी। उसमें से एक साधारण-सा आदमी और एक बहुत मोटा-तगड़ा और

गोरा पहलवान निकला। साथ के आदमी ने हमारी मुलाकात करायी पहलवान हरनाम सिंह वगणीए के साथ। नाम तो हमने पहले ही सुना हुआ था, पर रूबरू होकर गद्‌गद हो गये। हम चरण छूकर फिर दण्ड निकालने लगे, पर जोगिन्दर पहलवानों के साथ काफी देर बातचीत करता रहा। जाते समय हरनाम सिंह ने मुझे सरसरी तौर से बुलाकर मेरा नाम व गाँव का पता पूछा। उसके जाने के बाद जोगिन्दर ने बताया कि यह मेरे अखाड़े में अभ्यास करना चाहता है। पर मैंने मना कर दिया है, यह कहकर कि शायद हमारी कुश्ती ही हो जाए, क्योंकि हरनाम सिंह ग्रेट वर्ल्ड स्टेडियम की ओर से आया था और जोगिन्दर वेसे ही डर गया था कि हरनाम सिंह के साथ अभ्यास करने से उसकी हेठी होगी, क्योंकि इस अखाड़े मे ंवह सबसे तगड़ा है और जब हरनाम सिंह ने उसके बच्चों की तरह अभ्यास कराये तो लोग क्या कहेंगे? वरना सब जानते थे कि जोगिन्दर और हरनाम की कुश्ती नहीं हो सकती। दोनों के जोड़ों में जमीन-आसमान का अन्तर था।

मैंने गुरु धारण किया

उन दिनों सिंगापुर में कुश्तियाँ कराने वाले दो ठेकेदार थे। हैप्पी वर्ल्ड स्टेडियम का ठकेदार भारतीय रामदरश सिंह था जिसका गाँव बिजौली भटियाँ, पोस्ट गौंग जयनगर, जिला देवरिया, उ.प्र. और ग्रेट वर्ल्ड का एक अँग्रेज था। दोनों की आपस में बहुत लगती थी। हैप्पी वर्ल्ड वाले जोगिन्दर सिंह सुरसिंघिया, दारा सिंह दुलचीपुरिया तथा कई अँग्रेज व चीनी पहलवान थे। दूसरी तरफ ग्रेट वर्ल्ड वालों के पास अँग्रेज पहलवान ज्यादा थे। केवल एक हरदित्त सिंह ही हिन्दुस्तानी पहलवान था और चीनी भी कम थे। इसीलिए ग्रेट वर्ल्ड के ठेकेदार ने विशेष रूप से हिन्दुस्तान से पहलवान हरनाम सिंह वगणीए को बुलवाया था। दोनों ठेकेदारों की कुश्तियाँ शनिवार शाम को हुआ करती थी। मैं और मोहन जोगिन्दर सिंह के साथ हर शनिवार को कुश्तियाँ देखने हैप्पी वर्ल्ड पहुँच जाया करते थे। हैप्पी वर्ल्ड और ग्रेट वर्ल्ड में कुश्तियों के अलावा मनोरंजन के कई और साधन भी थे। कहीं मलेशियन नृत्य-गीत, कहीं चीनी ड्रामा तथा कई और खेल, हमारा शनिवार बहुत मौज-मस्ती से गुजरात था।

एक शनिवार को पहलवान हरनाम सिंह हैप्पी वर्ल्ड की कुश्तियाँ देखने आ गया। मैं भी उसके पास जा बैठा, क्योंकि पहलवान जिस दिन हमारे पास आया था, उसी दिन से ही वह मुझे अच्छा लगने लगा था। मैंने जाकर चरण-वन्दना की तो पहलवान ने पूछा—आज तेरी कुश्ती किसके साथ है?

मैंने कहा कि मुझे तो अभी तक इस ढंग की कुश्ती लड़ना ही नहीं आती।

—क्यों? जोगिन्दर ने तुझे यह कुश्ती नहीं सिखायी? मैंने कहा जी, मैं तो सीखने को अधीर हूँ, पर जोगिन्दर पहलवान को छह महीने हो गये कहते हुए कि अभी और तगड़ा हो ले फिर सिखाऊँगा। यह सुन पहलवान ने कहा ताकतवर व कमजोर की इसमें क्या बात है, अगर जोगिन्दर नहीं सिखाता तो मेरे पास ग्रेट वर्ल्ड में आ जाया कर, मैं तुझे सिखा दूँगा यह कुश्ती। मुझे क्या चाहिए था। मैंने

कहा कि मैं कल ही आपके पास आऊँगा।

कुश्तियों के बाद जब हम घर आये तो मैंने जोगिन्दर सिंह पहलवान से कहा कि पहलवान हरनाम सिंह ने कहा है कि ग्रेट वर्ल्ड में आ जाया कर तुझे कुश्ती सिखा दूँगा। जोगिन्दर सिंह ने फौरन जवाब दिया ठीक है, तुम सीखने के लिए उसके पास चले जाया करो।

मैं दूसरे दिन मोहन से रास्ता पूछकर जा पहुँचा पहलवान हरनाम सिंह के पास। ये लोग शाम के समय रिंग में व्यायाम किया करते थे।

पहलवान ने मुझे सिखाना शुरू कर दिया। एक चीनी पहलवान को मेरे साथ कुश्ती के लिए लाया गया। हालाँकि मैं अभी तक कुश्ती पूरी तरह नहीं सीख पाया था कि हरनाम सिंह का कांट्रैक्ट खत्म हो गया और वह वापस हिन्दुस्तान जाने के लिए तैयार हो गया। लेकिन जाने से पहले उसने बाबू रामदरश सिंह के साथ बातचीत कर ली थी कि एक महीने बाद वह हैप्पी वर्ल्ड में आकर कुश्ती लड़ेगा। क्योंकि ग्रेट वर्ल्ड वालों ने हिन्दुस्तान से दो पहलवान और बुलवा लिये थें एक था अर्जुन सिंह तथा दूसरा था टाइगर जोगेन्दर सिंह। अर्जुन सिंह तो बड़ी उम्र का था, पर टाइगर भरपूर जवानी के दौर में था। ये दोनों पहलवान जब ग्रेट वर्ल्ड में आये तो हरनाम सिंह हिन्दुस्तान चला गया। पर मैं अभ्यास के लिए ग्रेट वर्ल्ड पहुँच जाया करता था। चीनी पहलवान के साथ फ्री-स्टाइल और अभ्यास के दाँवपेंच करता था और सवेरे अपने अखाड़े में जोगिन्दर सिंह के साथ अभ्यास किया करता था।

टाइगर जोगिन्दर सिंह और अर्जुन सिंह पहलवान गुरुद्वारे में ठहरे थे। मैं अक्सर दिन में इनके पास चक्कर लगा लिया करता था। टाइगर का शरीर उस समय इतना शुन्दर था कि देखकर भूख भाग जाती थी। मैं चाहता था कि टाइगर हमारे अखाड़े में आया करे और हमें देशी व परदेशी कुश्ती के ढ़ंग सिखाये पर वह हमेशा मेरी बात टाल जाता था। एक दिन दोपहर में चादर फेंककर कहने लगा कि आ तुझे दाँव बताऊँ! और कहा कि तुम्हें सुरसिंघिया कुछ नहीं बताता तो उसके पास रहता ही क्यों है? इसपर मैंने कहा वह कहता है कि अभ्यास करते हुए दाँव अपने आप ही आ जाते हैं। यह सुनकर टाइगर हंस पड़ा और कहने लगा इसका मतलब है कि सुरसिंघिया बिना उस्ताद का पहलवान है। उसे खुद भी कुछ नहीं आता होगा। खैर, पट्ठे, अगर तुम्हें पहलवानी करनी है तो पहलवान हरनाम सिंह का शागिर्द बन जा। वह मेरा भी गुरु है और भी कई पहलवानों का गुरु है। तेरा कद बुत बढ़िया है। तुझे केवल कुश्ती का ढंग आना चाहिए और सुनो,

ताकतवर होकर कहीं हमारा ही रास्ता न रोकने लगना। यह बात तो टाइगर ने मजाक में ही की थी, पर हो सच गयी। उसके तीन साल बाद लोगों ने मेरी टाइगर के साथ कुश्ती तय करवा दी। एक दंगल में टाइगर के साथ हुई कुश्ती का हाल बाद में बताऊँगा, पहले अपनी पहलवान बनने की जद्दोजहद आपको बता दूँ।

जब टाइगर ने मुझे हरनाम सिंह का शागिर्द बनने को कहा, तब वह हिन्दुस्तान गया हुआ था और उसने हैप्पी वर्ल्ड के ठेकेदार की ओर से कुश्ती लड़ने आना था। इन दिनों हैप्पी वर्ल्ड स्टेडियम का स्टार आकर्षण दारा सिंह दुलचीपुरिया था तथा ग्रेट वर्ल्ड का स्टार आकर्षण किंगकांग था। पर चन्द ही सप्ताह में टाइगर जोगिन्दर सिंह ने इन दोनों पहलवानों की मशहूरी को मात दे दी थी। ग्रेट वर्ल्ड वालों के दंगल में इतनी भीड़ लगने लगी कि ठेकेदार रामदरश ने टाइगर के दुगने से भी अधिक पैसे तय करके अपनी ओर बुला लिया। हैप्पी वर्ल्ड की शान दूनी हो गयी। जब पहलवान हरनाम सिंह वापस आया तो मैं बाकायदा रस्मोरिवाज के साथ उसका शागिर्द बन गया। मैं अब सुरसिंघिया का अखाड़ा छोड़कर वापस न्यूशन कैंप में रहने लगा था।

पहलवान हरनाम सिंह पथरू पहलवान के अखाड़े में अभ्यास करता था। अखाड़ा न्यूशन कैंप से कोई दस मील दूर था। मैं हर रोज साईकिल पर न्यूशन कैंप से अखाड़े जाता था। पथरू पहलवान खुद तो कुश्ती लड़ना छोड़ चुका था, पर अपने लड़के छतरधारी को कुश्ती लड़ने को तैयार कर लिया था। जब हरनाम सिंह हिन्दुस्तान से सिंगापुर वापस आया तो टाइगर और अर्जुन सिंह अमरीका चले गये थे तथा मेरी भी हैप्पी वर्ल्ड के दंगलों में छोटे वर्ग की कुश्तियाँ का सिलसिला छह महीने में बिल्कुल ठप हो गया क्योंकि दोनों ठेकेदारों को घाटा होने लगा था तथा फ्री-स्टाइल वालों के दफ्तर बन्द हो गये।

पहलवान हरनाम सिंह ने मुझसे कहा अब तुम नौकरियों का ख्याल छोड़कर मेरे साथ ही रहो। देशी कुश्तियाँ लड़ने के लिए मलाया चलते हैं। मैंने उनकी बात मान ली। चाचा निरंजन सिंह ने कहा—अगर तुम मलाया जा रहे हो तो मैं हिन्दुस्तान चला जाऊँगा। मैंने कहा—ठीक है। अब मैं खुद पहलवानी की जिम्मेदारी सम्भाल सकता था क्योंकि मुझे कुश्तियों से खाने-पीने लायक पैसे मिलने शुरू हो गये थे।

मैं और उस्ताद जी (पहलवान हरनाम सिंह) मलाया पहुँचे और हमने ईपू शहर में डेरा डाला। वहाँ एक पहलवान होता था कुन्दन सिंह पंजवड़िया तथा एक ओर महरियों का लड़का पहलवानी करता था। महरियों का होटल चलता था और कुन्दन सिंह आदि की भैंसे थी और शायद ट्रांसपोर्ट भी थी। यह दोनों और मैं

हरनाम सिंह की कुश्ती करवाते थे। उस्ताद जी की एक मलाई पहलवान से कुश्ती तय हो गयी । वह पुलिस में नौकरी करता था। हमें लोगों ने खुराक इकट्ठी करके दी और उसे मालवे वालों ने खिलाना शुरू किया। 40-45 दिन का समय रखा गया। इन 45 दिनों में मैंने जितनी खुराक खायी, शायद ही कभी खायी हो। पहलवान हरनाम सिंह खुद तो खाते ही थे, पर मुझे जबरदस्ती ज्यादा खिलाया करते थे। बादामों की बोरियों और घी के कनस्तर तो इतने थे कि ईपू से वापस सिंगापुर आते समय हम ये बेचकर आये थे। ईपू के दंगल में मेरी कुश्ती एक माझे के पहलवान से हुई। वह भी पुलिस में काम करता था। नाम तो अब याद नहीं पर गाँव उसका ठरू था। उस्ताद जी ने कुश्ती जीत ली और मेरी बराबर रही। हमारे प्रशंसकों ने गहरी खुशियाँ मनायी। उस्ताद जी गिनकर बताते थे कि उन्होंने मलाया में कितने पहलवानों को हराया है।

इस जीत को खुशी में वहाँ के एक सेठ ने हमें खाने पर अपने घर बुलाया। शाम का वक्त था। मैं और उस्ताद जी उसके घर खाना खाने गये। उसने शराब की बोतल हमोर सामने रखी तो उस्ताद जी ने कहा—पहलवानों को शराब नहीं, दूध-घी खिलाते हैं।

उसने कहा —शराब आप इस समय पीएँ और दूध-घी का मैं बन्दोबस्त करता हूँ। उसने अपने नौकर को आवाज देकर चेकबुक मँगवायी। सौ डालर का चैक उस्ताद जी को तथा 50 डालर को चेक मुझे दिया। मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि यह कागज हमें क्यों दे रहा है? मैंने हौले से उस्ताद जी से पूछा कि यह चेक क्या चीज है? तो उन्होंने बताया—सम्भालकर जेब में रख लो, फिर बताऊँगा।

उस भले आदमी ने अब शराब की बोतल खोल ली उस्ताद जी ने उसके साथ दो-तीन पैग लिये। मैंने तो ठण्डा शरबत ही पिया। शराब के सुरूर में बातें करते-करते उसने रिकार्ड लगा दिया। वियोग का दर्द भरा गीत जब रिकार्ड से निकला तो उसकी आँखों में आँसू आ गये। हम बड़े हैरान हुए। पता लगा कि उसकी पत्नी तथा बच्चे चार दिन हुए हिन्दुस्तान चले गये हैं। जहाज में सफर कर रहे थे। कहने लगा इस समय वे समन्दरन के बीच होंगे और मैं यहाँ बैठा शराब पी रहा हूँ—यह कहकर वह जोर-जोर से रोने लगा। हमने बड़ी मुश्किल से उसे चुप कराया। नौकर ने बताया कि जब भी यह रिकार्ड बजता है, इनकी रुलाई फूट पड़ती है और पीकर यह रिकार्ड जरूर बजाते हैं। फिर पत्नी से टेलीफोन पर बात करने की कोशिश करते हैं। मैंने पूछा—समन्दर के बीच जा रहे जहाज पर पानी

में किस तरह बात हो सकती है, तो उसने बताया कि वायरलैस से हो सकती है। उस दिन उसके नौकर ने बहुत हैलो हैलो किया, पर बात नहीं हो सकी। खाना खाने के बाद उसकी कार हमें हमारे ठिकाने पर छोड़ गयी। मैं बड़ा हैरान था कि इतने अमीर लोग भी हैं! मैंने उस्ताद जी से चेक के बारे में पूरी जानकारी लेरी चाही, पर ज्यादा पता शायद उन्हें भी नहीं था या समझाना नहीं आया। बात गोलमोल ही मेरे पल्ले पड़ी।

मैंने पूछा—इस आदमी के पास इतनी बड़ी कॉपी थी, जिसमें से एक कागज पर आपको सौ लिख दिया और एक पर मुझे पचास। इस कागज का अपन क्या करेंगे? उस्ताद जी ने कहा कि कल बैंक से हमें नोट मिल जाएँगे। मैंने पूछा भई, यह आदमी जितने पैसे लिख दे, बैंक वाले उतने ही दे देंगे। उन्होंने कहा—हाँ, इस तरह ही है। मैंने फिर कहा—लिखने ही लगा था तो ज्यादा लिख देता तो क्या हर्ज हो जाता? उस्ताद जी ने कहा यह बहुत ज्यादा नहीं लिख सकता, जितना बैंक वालों ने कहा है उतने ही लिख सकता है।

मैंने और ज्यादा न पूछा, पर मेरी तसल्ली ने हुई। जब हिन्दुस्तान में मुझे कुश्तियों के ज्यादा पैसे मिलने शुरू हुए तो एक बैंक में काम करने वाले दोस्त ने मेरा खाता खुलवाया तथा सारी योजना बतायी, तब जाकर मुझे पता लगा कि चेक बुक का मतलब क्या है। अगर उस्ताद जी तब ही बता देते कि पहले अपने पैसे बैंक में रखने होते हैं, फिर जब जी करे चेक द्वारा निकलवा सकते हैं, तो बात ही खत्म हो जाती।

शुरू से ही हर बात की तह तक पहुँचने की आदत रही है। हमारे खानदान में एक चाचा बी.ए. तक पढ़ गया। मैंने उससे पूछा क्या आपको सब कुछ पढ़ना आता है? उन्होंने कहा—हाँ। गली में से अखबार का एक मैला-कुचैला टुकड़ा झाड़-पोंछकर चाचा को थमाया और कहा पढ़ो। उन्होंने कहा यह तो अँग्रेजी भाषा में लिखा है, तुझे समझ नहीं आएगी।

मैंन कहा आप पढ़ो तो सही, फिर अनुवाद करके बता देना। उन्होंने झट से कागज पकड़ा और पढ़ दिया, फिर अनुवाद करने लगे तो मैंने कहा इसकी जरूरत नहीं, मैं तो यह देखना चाहता था कि अपने बी.ए. पास किया है कि वाकई आप सब कुछ जानते हो।

ईपू के दंगलों के बाद हम कुआलालम्पुर शहर पहुँचे। यह मलेशिया का सबसे बड़ा शहर है तथा यहाँ भी सिंगापुर की तरह बहुत पंजाबी रहते हैं। यहाँ हर वर्ष एक मेला भी लगता है जिसमें दूर-पास के लोग शामिल होते हैं। इस मेले की

धूम सिंगापुर तक है। इस मेले में खेलों पर विशेष रूप से कुश्तियाँ करवायी जाती हैं। उस्ताद जी ने इस मेले में लड़ने के लिए लोगों से उग्राही करनी चाही? पर लोग कहने लगे कि सामने लड़ने वाला भी तो चाहिए। उस समय उस्ताद जी की बराबरी का वहाँ कोई पहलवान नहीं था। उस्ताद जी ने कहा—मेरे इस शागिर्द की कुश्ती हो जाएगी तो मैं फेरी निकाल लूँगा। क्योंकि मेरी टक्कर के एक-दो पहलवान वहाँ थे।

उग्राही तो ज्यादा नहीं हुई, पर हम वहां रूककर अभ्यास करने लगे। उत्साद जी के गांव का एक आदमी सरदार दलीप सिंह वहां कम्पाउण्डर था। बड़ा ही नेक आदमी था। उसने हमारी बहुत सहायता की और रहने के लिए जगह भी दी। अभी हमें कुआलालम्पुर आए सप्ताह भर ही हुआ थ कि एक पहलवान हिन्दुस्तान से वहाँ पहुँच गया। उस्ताद जी इसे जातने थे। यह उन्हीं के इलाके का था। नाम था तरलोक सिंह और गाँव था ठठियाँ महंता।

उस्ताद जी कहने लगे—तेरे साथ इसकी कुश्ती देखनी है। मैंने हाँ कर दी। उस्ताद जी ने दूसरे दिन तरलोक को अखाड़े बुला लिया। वह उम्र में तो मुझसे दो-तीन साल बड़ा था, पर उसका कदबुत बिल्कुल मेरे जैसा था। हमारा अभ्यास शुरू हुआ तो तरलोक ने पहले ही बस कर दी। कहने लगा सफर की थकावट बहुत है, लेनिक पाँच-छह दिन बाद फिर उस्ताद जी ने हमें अभ्यास में लगाया, उस दिन भी तरलोक ने ही बस की। मेरा हौसला बढ़ गया, मैं अपने आपको उससे ज्यादा तगड़ा महसूस करने लगा।

दंगल से कोई पन्द्रह दिन पहले उस्ताद जी को बवासीर का ऑपरेशन करवाना पड़ा। कहने लगे—दंगल में मेरी कौन-सी कुश्ती होनी है, मैं ऑपरेशन करवा ही लेता हूँ। तुझसे कोई कुश्ती लड़ने आ गया तो ठीक, नहीं तो तुम और तरलोक लड़ लेना। मैंने कहा ठीक है, पर कुश्ती गिरने वाली होनी चाहिए। गुरु जी ने हाँ कर दी। उस दिन के बाद तरलोक हमारे अखाड़े में नहीं आया तथा ऑपरेशन होने से अभ्यास भी बन्द हो गये थे। दंगल से पहले केवल पाँच-छह दिन ही अभ्यास हो सका। कुश्तियों से ऐन एक दिन पहले पहलवान अर्जुन सिंह और टाइगर जोगिन्दर कुआलालम्पुर आ धमके। लोगों ने तो खुशियाँ मनायी, पर उस्ताद जी को बड़ा दुख हुआ। कहने लगे ये कलानोरिये यहाँ भी आ गये! अच्छा भला मेला हाथ लगा था, अब हमें यहाँ से क्या मिलना है? अगर मुझे पता होता तो ऑपरेशन न करवाता।

पहलवान अर्जुन सिंह की ओर से यह तजवीज पेश हुई कि मेरी और नामे (उस्ताद जी) की कुश्ती हो जाए और टाइगर की फेरी निकाली जाए या नामे और

टाइगर की कुश्ती हो जाए और अर्जुन की फेरी निकाली जाए। किसी जमाने में उस्ताद जी का अभ्यास अर्जुन सिंह करवाया करता था और अपने आपको इनसे ज्यादा तगड़ा समझता था, पर अब उम्र ज्यादा हो गई थी। खैर, उस्ताद जी ने ऑपरेशन न करवाया होता तो अर्जुन के साथ कुश्ती लड़ लेते, पर अब तो सवाल ही पैदा नहीं होता। जोगिन्दर चूँकि इनका शागिर्द था, इसलिए उसके साथ ज्यादा खतरे वाली बात नहीं। इसलिए जोगिन्दर और उस्ताद जी की थोड़ी देर कुश्ती हो गयी तथा अर्जुन सिंह ने फेरी निकाल ली। (फेरी का अर्थ–अखाड़े में खुला चैलेंज कि जिसका जी करता हो पहलवान के साथ दो-दो हाथ करे देख ले।)

मेरे साथ वहाँ का कोई लोकल पहलवान कुश्ती न लड़ा तो मेरी और तरलोक की कुश्ती हुई। तरलोक का ननिहाल मालवा में था, इसलिए जहाँ उसका मन करे मालवी बन गाँव ननिहाल का बता देता, और जहाँ मन करे गाँव ठठियाँ का बताकर माझे का बन जाता। मुझसे थोड़ी ही कुश्ती होने के बाद मालवी लड़कों ने कुश्ती बराबरी पर छुड़ा दी। मुझे इस बात का बड़ा अफसोस रहा। गुरु जी ने कहा तुम फिक्र न करो, तुम्हें फिर कुश्ती का मौका मिलेगा। और वाकई ही इसके दो-तीन महीने बाद सिंगापुर में एक मेले में मेरी और तरलोक की कुश्ती हुई। इस बार कुश्ती काफी लम्बी चली, पर तरलोक मुझसे फिर भी चित न हुआ। मैं भी बहुत थक गया था। हाथ इतने थक गये थे कि शाम को खाना खाने के वक्त मुश्किल से ग्रास मुँह में जाता था।

मुझे इस कुश्ती का बड़ा अफसोस हुआ। दिल में कई ख्याल आने लगे कि शायद मैं बड़ा पहलवान न बन सकूँ। गुरु जी ने मेरा हौसला बढ़ाते हुए कहा कि हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिए। तुम्हारे पास तगड़ा बनने के लिए अभी तीन-चार साल हैं। पहलवान गंडा सिंह जब चार बड़ी कुश्तियाँ हारकर तगड़ा हुआ तो सारे देश में धूम मचा दी थी।

मैंने यह बातें सुनकर फिर तैयारी करनी शुरू कर दी तथा भगवान के आगे फरियाद की कि हे वाहेगुरु, मैं तुझ से कुछ नहीं माँगता, बस मेरा कुश्तियों में इतना नाम कर दे कि हिन्दुस्तान के सभी इलाकों के लोग मेरे नाम से परिचित हो जाएँ।

इन्हीं दिनों हमें एक बॉक्सिंग के ठेकेदार मिस्टर रनाक ने इण्डोनेशिया में कुश्ती की दावत दी। वह बॉक्सिंग और कुश्तियाँ एक ही दंगल में प्रस्तुत करना चाहता था। एक महीने का अनुबन्ध पत्र हुआ। मैं और गुरु जी सिंगापुर से पानी के जहाज से इंडोनेशिया के लिए चल दिये। जगीर सिंह बॉक्सर उस जमाने का

मशहूर मुक्केबाज था। वह शायद हवाई जहाज से गया था। इण्डोनेशिया से वापस आते हुए मैं और गुरुजी हवाई जहाज से से आये। वह मेरी हवाई जहाज से पहली उड़ान थी। छोटा-सा जहाज था। गुरु जी खिड़की की तरफ बैठे थें मैं उनसे हवाई जहाज के बारे में बातें पूछ रहा था क्योंकि वह तो कई बार हवाई जहाज से गये थे। वह तो बहुत बड़ा था, यह तो खिलौना-सा है। यह देखो, रोशनदान की चिटकनी ऐसे लगायी है जैसे पानी वाले जहाज की होती है। यह कहकर उन्होंने चिटकनी को थोड़ा मोड़ा तो खिड़की का शीशे वाला फ्रेम फटाक करके खुल गया। आवाज इतनी हुई कि सभी यात्रियों का ध्यान हमारी ओर को गया। मैंने फोरन फ्रेम का हैंडिल पकड़कर खींचा और खिड़की बन्द कर दी। एयर होस्टेस दौड़ी-दौड़ी आयी, कुछ दवा-सी मेरे हाथ पर मली, फिर मलाई भाषा में पूछा कि आपका हाथ तो ठीक है न? मैंने कहा—हाँ, बिल्कुल ठीक है। इसपर उसने कहा कि तेजी से हाथ टूट भी सकता था और खिड़की अगर जल्दी बन्द न होती तो हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त भी हो सकता था। सभी ने मेरी प्रशंसा की, मैं अपने आपको उस यात्रा का हीरो महसूस कर रहा था।

यह तो किस्सा है इण्डोनेशिया से वापसी का, पर जाने वाला भी कम हिलचस्प नहीं। पानी वाले जहाज में हम प्रथम दर्जे में सफर कर रहे थे। हिन्दुस्तान से सिंगापुर तो डैक में पहुँचे थे। प्रथम दर्जे के ठाठ कुछ अलग ही थे। हाल में बैठे हुए मुझे बाथरूम जाने की जरूरत महसूस हुई। मैं पूछकर एक कमरे में चला गया। हाथ धोने का प्रबन्ध था और अँग्रेजी टॉयलेट लगायी हुई थी, जो मैंने पहले कभी नहीं देखी थी। मैं वापस आ गया तो गुरू जी ने फिर कहा वही जगह है जंगल जाने वाली। मैंने कहा—वहां बैठने की जगह तो है नहीं।

गुरु जी को मजाक करने की आदत थी कहने लगे जा एक बार और अच्छी तरह देख। मैं गया और देखकर फिर वापस आ गया। इस बार गुरु जी मेरे साथ गये और जाकर समझाया कि यह है शौच का स्थान। मैंने कहा यह तो पानी की खुरली जैसी है, इसपर बैठना कैसे है?

गुरु जी ने कहा कि जैसे कुर्सी पर बैठते हैं। बात बड़ी बजीब लगी, पर मरता क्या न करता। इस ढंग की आदत डालने में समय लगा। जब तो इस बात पर इतना ध्यान नहीं गया पर आज मैं सोचता हूँ कि अलग-अलग रहने वाले लोगों के रहन-सहन में कितना फर्क होता है। एक दूसरे को अपनाने के लिए छोटी-छोटी बातों में कितना फर्क होता है। एक दूसरे को अपनाने के लिए छोटी-छोटी बातों में कितनी मुश्किलें आती हैं। आज मेरे बच्चे बम्बई निवासी हैं। गाँव जाने से ज्यादातर

इसलिए कतराते हैं कि वहां जंगल-पानी जाने का प्रबन्ध बड़ा अजीब है।

बतावी शहर के बारे में मैं शायद पहले लिख चुका हूँ। मैं, उस्ताद जी तथा जगीर सिंह एक ही होटल में रहते थे। हफ्ते में एक दंगल होता था और चार कार्यक्रमों में से मैं दो दंगल लड़ा था तथा गुरु जी तीन! यह भी अच्छा हुआ कि हमारी कोई हार नहीं हुई। वहाँ के हिन्दुस्तानियों ने हमारी बहुत खातिर की। सिंगापुर में तो हर तरह के लोग रहते हैं—व्यापारी, नौकरीपेशा, मजदूर, पर इण्डोनेशिया में रहने वाले करीब सारे भारतीय व्यापारी थे। इण्डोनेशिया का दौरा कामयाब रहा और इसके बाद मेरा अकेले का रंगून जाने के लिए कांट्रेक्ट हुआ।

सिंगापुर पहुँचे अभी तीन-चार दिन हुए थे कि उस्ताद जी ने खबर दी कि कुआलालम्पुर मेरी पत्नी पहुँच गयी है और उसने सन्देश भिजवाया है कि फलाने-फलाने के पास आकर मुझे ले जाओ। अचानक यह खबर सुनकर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। न कोई सलाह-मशविरा, न कोई चिट्ठी-पत्री। मेरे गाँव से आने के बाद चिट्ठी आ गयी थी कि अलग होने बाली बात मेरे बाहर आने से खत्म हो गयी है। बचनो अब हमारे साथ ही रहती है और कभी-कभार मायके चली जाती है।

मैं यह खबर सुनकर खुश हो गया था और पूरा ध्यान पहलवानी पर लगा दिया था। घरवालों को इस बात का पूरा ज्ञान को गया था कि मैं सारी जद्दोजहद पहलवान बनने के लिए ही कर रहा हूँ। फिर यह झंझट किस तरह खड़ा कर दिया। खैर, मैंने गुरू जी को कहकर स. दलीप सिंह को खबर भेजी कि सारी बात का पता लगाकर टेलीफोन करो कि यह बात सच है या झूठ? दलीप सिंह ने बताया कि यह बात सच है। मैं उसे घर लाना चाहता था, पर उसका कहना है कि जब तक दारा सिंह खुद नहीं आता मैं उतने समय वही रहूँगी, जहाँ हूँ।

मैं और गुरू जी कुआलालम्पुर गये और बचनो को सिंगापुर ले आये।

मैंने कहा, भलीमानस, यह अचानक आने का मतलब मेरी समझ में नहीं आया। अगर तुम्हें आना ही था तो कम से कम मुझे पहले चिट्ठी तो लिखनी थी। इतना बड़ा फैसला घरवालों ने मुझसे पूछे बिना क्यों किया तो वह कहने लगी आपके घरवालों को तो पता भी नहीं। मैं बहुत दिनों से मायके में थी और वहीं से इधर आ गयी।

मैंने कहा यह तुमने ठीक नहीं किया, पर खैर, अब हो भी क्या सकता है। हमने देश वापस आने का कार्यक्रम बनाया। योजना यह बनी कि मुझे तो रंगून एक महीने बाद जाना है। तुम बीस दिन यहां सिंगापुर रहकर फिर जहाज पर बैठना । मैं तुम्हे कलकत्ता मिलूँगा। और इसी तरह टिकटों का बन्दोबस्त किया गया।

पत्नी को गुरु जी की एक साली के घर छोड़कर मैं रंगून चला गया। पीछे से उसको जहाज में बिठा दिया। मुझे गुस्सा भी आ रहा था और अपनी हालत पर तरस भी, पर आज मैं सोचता हूँ तो महसूस करता हूँ कि उस बेचारी का क्या दोष था? अगर पति परदेश जाकर ढाई-तीन साल तक वापस ही न आये तो पत्नी का दिल ही जानता होगा। आखिर वह भी इन्सान है।

मैं रंगून में एक महीना रहा, पर कुश्ती केवल एक से हुई। जैसा भी काम मिला। ठेकेदार ने वायदा किया कि वह सिंगापुर में दंगल शुरू करने वाला है। मैं हिन्दुस्तान से जल्दी वापस आ जाऊँ तो कुश्तियों का अच्छा मौका मिलेगा। मैंने कहा—मैं आने की कोशिश करूँगा।

मैं कलकत्ता में सिंगापुर से आने वाले जहाज का इन्तजार कर रहा था और बड़े गुरुद्वारे में ठहरा हुआ था। एक दिन मैं बड़े बाजार में एक दुकान पर ऐसे ही निठल्ला खड़ा था कि दो आदमी मेरी पास आये। कहने लगे—जवान, कुश्तियाँ लड़ते हो? क्या नाम है तुम्हारा? मैंने कहा—मेरा नाम तो आप लोगों ने नहीं सुना होगा। मैं सिंगापुर से आया हूँ और पंजाब जाऊँगा।

उन्होंने कहा—तुम्हारा शरीर तो केसर सिंह पहलवान जैसा है।

इसपर मैंने कहा आप मजाक न करें। मैंने सुना है कि केसर सिंह तो हिन्दुस्तान का अव्वल दर्जे का पहलवान है। उन्होंने कहा कि पिछले दिनों केसर सिंह और मंगलाराय की कुश्ती बराबर रही है। पहलवान, तुम कलकत्ता में कुश्ती लड़ोगे?

मैंन कहा—मेरा और क्या काम है। कुश्तियाँ लड़ना ही मेरी जिन्दगी का सबसे बड़ा मकसयद है! उन्होंने कहा फिर कहो, कुश्ती लड़ने के कितने पैसे लोगे?

मैंन कहा आप ही बातओ, क्या देंगे। तो कहने लगे तुम्हारा नाम मशहूर होता तो बात अलग थी। हम तुम्हे कुश्ती लड़ने के 400 रुपये देंगे। मैंने कहा—मन्जूर है! इसके बाद उन्होंने बताया कि मेरी कुश्ती बिहार के एक पहलवान दुखरन उझार के साथ होगी ठीक है। आज से 10 दिन बाद! मैंने हाँ कर दी तो उन्होंने सौ रुपये एडवांस दिये और मेरा ठिकाना देखकर चलते बने। मैंने उनसे अभ्यास के लिए जगज पूछी तो उन्होंने एक अखाड़े का नाम बताया । मैं दूसरे दिन पूछता-पूछता अखाड़े जा पहुंचा। अपने गुरू की एक बात मैंने पल्ले बाँध ली थी। उन्होंने कहा था पहलवानी का एक बड़ा रहस्य यह है, आप कहीं भी हों, किसी हालत में हो, व्यायाम जरूर करना है। सप्ताह में केवल एक दिन नागा करना है। हाँ अगर अखाड़े में अभ्यास करने की सुविधा न हो तो अभ्यास के वक्त दुबारा व्यायाम कर लो (व्यायाम का मतलब है दण्ड बैठकें मारना और अभ्यास का मतलब है अखाड़े

में पहलवानों के साथ लड़ना)। कई बार नयी जगह पर अभ्यास करने के लिए पहलवानों नहीं मिलते तो उस हालत में व्यायाम दिन में दो बार कर लेना चाहिए। पर जब आपको दंगल में किसी पहलवान के साथ कुश्ती करनी है तो अभ्यास का होना बेहद जरूरी है। केवल व्यायाम वाला शरीर जल्दी थक जाता है, इसलिए मैं जहाँ भी जाता था वहाँ अखाड़े का पता लगाकर अभ्यास के लिए पहुँच जाता था। रंगून शहर में भी मुझे एक अखाड़ा मिल गया था। किसी जमाने में मशहूर पहलवान बंसी सिंह वहां अभ्यास करते थे। मैंने अखाड़ेवालों को अपने गुरु का नाम बताया तो बड़े खुश हुए, क्योंकि हरनाम सिंह जी एक बार बंसी सिंह को चित कर चुके थे। वहाँ के पहलवानों के नाम तो अब याद नहीं, पर वह मेरे अच्छे दोस्त बन गये थे। जब गुरु जी ने कहा कि पहलवान की एक दिन वर्जिश न हो तो समझो सप्ताह भर की ताकत खत्म! अगर चार दिन की नागा हो जाऐ तो समझो महीने भर की ताकत खत्म! मतलब आप जितने ताकतवर आज हैं, अगर चार दिन व्यायाम नहीं करोगे तो इतने कमजोर हो जाओगे कि एक महीना व्यायाम करोगे तो आज जितने ताकतवर होओगे। इसलिए मैंने जब से बाकायदा पहलवानी शुरू की, कभी नागा नहीं पड़ने दी। अगर रेलगाड़ी में सफर कर रहे हैं तो समय आने पर वही व्यायाम कर लेते हैं चाहे कपड़े पहने ही करना पड़े, अगर पानी वाले जहाज का सफर है तो वहाँ भी व्यायाम कर लेता।

एक दिल श्रीलंका के कोलम्बो शहर में अभ्यास करने की बड़ी मुश्किल हुई। अभ्यास किये दो सप्ताह निकल गये पर अखाड़ा कोई न मिला। जिसे भी पूछिए कहे, पहले तो अखाड़ा होता था, पर अब कोई नहीं है। आखिर एक दिन सफलता मिली। शहर के बिल्कुल अन्दर एक गली में एक अखाड़ा मिला। उसके मालिक खलीफा इस्माइल की उम्र काफी हो चुकी थी और लड़का इस अखाड़े में कोई नहीं था। एक छोटे से कमरे में गहरी जगह करके मिट्टी डाली हुई थी। इस्माइल खलीफा मुझसे मिलकर बड़ा खुश हुआ क्योंकि मैं दो सप्ताह में, कोलम्बों में दो कुश्तियाँ जीतकर अपना नाम खासा मशहूर कर चुका था। मैंने अभ्यास करने की इच्छा जाहिर की तो पहलवान ने कहा—क्यों नहीं! कल से ताजा मिट्टी डलवा देंगे और दो-चार लड़कों को भी बुलाऊँगा तुम्हारे अभ्यास के लिए। वाकई जब सुबह मैं गया अखाड़ा तैयार था और दो लड़के भी थे, पर कमजोर से। जब इस्माइल ने देखा कि मेरी अभ्यास की इच्छा पूरी नहीं हो रही है तो खुद ही लंगोट पहनकर आ गया और कहने लगा—अभ्यास छोड़े तो अरसा हो गया है, पर फिर भी इन लड़कों से तो अभ्यास अच्छा ही कराऊँगा। वह वाकई इस उम्र में भी लड़कों से

तगड़ा था। इस तरह मेरा अभ्यास का गुजारा हो जाता था।

ओहो! मैं तो सन्तों की कथा सुनाने की तरह बात को आगे ले गया। पहले कलकत्ता की बात कर लेते हैं।

जब मैं अखाड़े पहुँचा तो दो पहलवान अभ्यास कर रहे थे, कुछ लड़के अभ्यास की तैयारियों में लगे थे। यह अखाड़ा बड़ी खुली जगह पर था और एक तरफ हमारी बिल्डिंग का क्लब भी था। शायद बिरला जी की मदद से यह संस्था चल रही थी। मैंने जब लंगोट पहनकर व्यायाम शुरू किया तो एक बूढ़ा खलीफा ने आकर मेरा नाम आदि पूछा। मैंने कहा कि मैं तो अभ्यास करने की इच्छा से यहाँ आया हूँ। हाँ, फलान आदमी ने इस अखाड़े का पता बताया था। आज से 9 दिन बाद मेरी कुश्ती दुखरन उझार के साथ होनी है। वह सब हैरान थे कि यह पतला-सा लड़का क्या बात कर रहा है! इसका तो हमने कभी नाम तक नहीं सुना। हाँ, एक दारा सिंह सखीरियाँ वाला है और अधिकतर उसे दारी कहते हैं। मैंने कहा कि आप मेरा अभ्यास करवाओ। कुश्ती में तो तगड़े ने ही जीतना है, फिक्र वाली कोई बात नहीं है।

बूढ़े खलीफा ने एक युवक को मेरे साथ लगा दिया। अभ्यास बढ़िया हुआ। मैंने उसकी बस करवाने के बाद, दो छोटे लड़कों के साथ अभ्यास किया पर वे कमजोर थे। एक पहलवान बिल्कुल मेरे जैसे शरीर वाला था, खलीफा ने उसको नहीं कहा।

दूसरे दिन उस पहलवान के साथ मेरा अभ्यास हुआ। उसका पहला नाम तो अब याद नहीं, पर दूसरा नमा उझार ही था। वह अखाड़े के सभी जवानों से तगड़ा था, पर मुझे से कमजोर निकला। दो-तीन दिन के अभ्यास के बाद वह मेरा दोस्त बन गया। फिर उसने बताना शुरू किया कि भई, दुखरन, जिसके साथ तुम्हारी कुश्ती तय हुई है, बड़ा नामी पहलवान है कि ढाक का दाँव ऐस मारता है कि सामने वाले को चित कर देता है। अगर तुम उसकी ढाक पर न चढ़े तो शायद तुम न हारो।

उसकी ढाक से बचने के तरीके उसने मुझे ऐसे बताये जैसे मैं बिल्कुल अनजान हुँ। खैर, मैं हाँ-हाँ करता रहा और अभ्यास का व्यायाम बढ़ाता गया।

दुखरन उझार के साथ कुश्ती लड़ने के लिए गुरुद्वारे से चले तो कुश्ती के शौकीन दस-बारह पंजाबी भी हमारे साथ आ मिले। ग्रन्थी साहिब ने मेरी गुरु ग्रन्थ साहिब के आगे 'चढ़दी कलां' की अरदास की और हम दंगल में पहुँच गये। कई छोटी कुश्तियाँ होने के बाद दो नम्बर की अक्कर सोहनी वसोइयों के लड़के चन्नण

पहलवान की हुई। चन्नण को चैलेन्ज देने वाला एक छोटे से कद का पहलवान था जिसकी हरकतें सारा दंगल देख रहा था। मैंने उसका नाम पूछा तो मेरे साथ के पंजाबियों ने बताया—यह मेहरू बाणिया वाला है। मैं गाँव में ही था जब छोटे थे, तब मेहरू की कुश्ती मेले में देखी थी। लोग कहते थे कि इस पहलवान के पास कोई विद्या है, इसीलिए अपने से बड़ों को चित कर देता है। मैंने सोचा आज कुश्तियों के बाद इस पहलवान से मिलना है।

मेरी कुश्ती की आवाज आयी। मैं अखाड़े में पहुँच गया। अखाड़े की पवित्र मिट्टी को नमस्कार करके मुट्ठीभर मिट्टी को अपने माथे से लगाया और देखा दुखरन पहलवान! एक सांवले रंग का, गेंडे जैसा गठा शरीर, मुझसे कद कुछ छोटा पर मोटा, सामने आ खड़ा हुआ। मुंसब ने कुश्ती शुरू करवाई। थोड़ी ही देर में दुखरन ने ढाक मारी, पर मैं बच गया क्योंकि मैं अपने बचाव में भी ध्यान दे रहा था। दुखरन आगे-पिछे करके ढाक वाले दाव तक ले आता था और फिर पैंतरा बदल लेता था। एक दो बार मैंने भी उसे पकड़ने की कोशिश की, क्योंकि सामने वाले पहलवान को अगर पता लग जाए मेरे मुकाबले वाला मुझसे डरता है तो वे उसे आसानी से गिरा लेता है। दुखरन की हजार कोशिशों के बाद भी जब वह मुझे नहीं पकड़ सका और मुंसब भी हमरारे कन्धों पर बार-बार मिट्टी डालकर थक चुका था इसलिए कुश्ती बराबरी पर छुड़ाई गयी। मेरे साथियों ने ऐसे खुशी मनायी जैसे मैं जीत गया हूँ। मेरा भी हौसला जरा बढ़ा कयोंकि हिन्द की सरजमीन पर बतौर पहलवान यह मेरी पहली कुश्ती थी। इससे पहले बचपन की कुश्तियाँ तो गिनती में ही नहीं आती।

इस कुश्ती के बाद मेरा नाम भी पहलवानों में गिना जाने लगा, हालाँकि मेरी उम्र इस समय 21 साल ही थी और पहलवानी के हिसाब से शरीर असली बढ़ने की उम्र में था। कुछ लोग झूठी उम्र बताकर लोगों को बरगलाते हैं, पर सच बात यह है कि 24-25 साल की उम्र से पहले शरीर की पुख्तगी नहीं होती। हाँ, यह बात अलग है कि कई लोग कच्ची उम्र में ही तगड़े हो जाते हैं। वह भी अगर चाहें तो 25-26 साल तक और ज्यादा तगड़े हो सकते हैं।

मेरी इस दुखरन वाली कुश्ती के बाद एक और कुश्ती तय हो गयी। यह पहलवान उत्तर प्रदेश के शहर गोरखपुर का रहने वाला था। इसका नाम मुझे इस समय याद नहीं। मैंने ठेकेदार को कहा कि सप्ताह भर के अन्दर कुश्ती करवा सकते हो तो मैं तैयार हूँ। क्योंकि मुझे पंजाब जाना है। मैं केवल सिंगापुर से आने वाले जहाज का इन्तजार कर रहा हूँ। ठेकेदार ने कुश्ती तय कर दी। 300 रुपये

तय हुए। कहने लगा दुखरन वाली टक्कर बड़े नाम वाली थी, इस मुकाबले की उतनी धूम नहीं रहेगी। मैं मान गया और मुकाबला पक्का हो गया।

इन्हीं दिनों मेरी मुलाकात दारा सिंह सखीरियाँ वाले, मेहरू बाणिए तथा सोहन सिंह वसोहिए के साथ हुई। दारा सिंह सखीरियाँ वाला बहुत सुन्दर व गोरा चिट्टा था। सुना है–इसका पिता भी अपने जमाने का तगड़ा पहलवान था। मेहरू बाणिए से मैंने पूछा कि लोगों में बड़ी चर्चा है कि तुम्हारे पास काली विद्या है क्या यह बात सच है? उसका भी थोड़े दिनों में मेरे साथ अच्छा लिहाज हो गया था। मुझे अलग करके उसने बताया कि लंगोट का सच्चा रहना की काली विद्या है। कहने लगा यह बात मेरे पिता ने मुझसे चढ़ती जवानी में कही थी और मैं बारह साल 'लंगोक का सच्चा' रहा। व्यायाम और अभ्यास बिना नागा करता रहा, तब कही जाकर बड़े मुकाबलों के पहलवानों से अपना लोहा मनवाया। यह बात उसने जब दूसरे पहलवानों से छुपाकर मुझे बतायी तो मैंने पल्ले बाँध ली और आगे चलकर मैं भी लगातार आठ साल तक -लंगोट का सच्चा' रहा। व्यायाम और अभ्यास बिना नागा करता रहा, तब कहीं जाकर बड़े मुकाबलों के पहलवानों से अपना लोहा मनवाया। वैसे तो देश के ऋषियों-मुनियों ने भी 'जत-सत' पर जोर दिया है पर आजकल कई देशों के पहलवान तथा विद्वान इस बात को नहीं मानते। उनका कहना है 'काम एक प्राकृतिक देन है' और इसके प्रयोग से ताकत नहीं घटती। इनकी दलीलों को भी झुठलाया नहीं जा सकता। क्योंकि हिन्दुस्तान के जितने भी बड़े से बड़े पहलवान हुए हैं, सारे बाल-बच्चेदार थे। हाँ, मेरा अपना विचार है कि अगर 25 साल की उम्र तक संयम रखा जाये तो हद से ज्यादा शरीर पुख्ता रह सकता है।

खैर, फिलासफी छोड़कर आपको आपबीती ही बताऊँ तो ठीक रहेगा।

सिंगापुर से जहाज दूसरी कुश्ती होने से दो दिन पहले कलकत्ता पहुँच गया। कुछ यात्रियों के साथ मेरी पत्नी भी आ गयी। बहुत से लोग एक-दो दिन गुरुद्वारे में ही ठहरे थे। हमें सरसरी तौर पर एक कमरा मिल गया था क्योंकि मेरी दुखरन वाली कुश्ती से हर आदमी खुश था और अपने रीति रिवाज के अनुसार पहलवान की हर तरह मदद करना अपना फर्ज समझते हैं। मुझे पहली रात ही पता चल गया कि श्रीमती अचानक सिंगापुर क्यों पहुँची थी। सिंगापुर की कुछ बातों से मुझे शक हुआ था, पर अब तो प्रमाण सामने आ गया था। उसके पेट पर हाथ रखा तो मुझे झुरझुरी-सी आ गयी, पर मैं बर्दाश्त कर गया। पता नहीं उसने मेरी हालत को महसूस किया या नहीं, पर मुझे चुप लेटे को इस तरह पूछा जैसे सब कुछ प्राकृतिक है। क्या बात है।

मैंने कहा—कुछ नहीं। अब आराम करना चाहिए। परसों मेरी कुश्ती भी है। पंजाब कब चलना है? उसने पूछा। मैंने जवाब दिया—कुश्ती के बाद चलेंगे।

बस, अन्धेरे में मैं यही सोच रहा था। कि तुमने ऐसी संगीन गलती की है, जिसे कभी माफ नहीं किया जा सकता। वह पता नहीं क्या सोच रही थी, पर यह तो पक्की बात है कि वह मेरे रवैये को भाँप गयी थी और बात को बढ़ाने की बजाय चुप रहने में ही भला समझा।

मैं तो सारी रात सो नहीं सका। चिन्ता और विचारों में करवटें बदलता रहा। और दूसरे दिन, वैसे भी कुश्ती से एक दिन पहले आराम ही करते हैं, अभ्यास नहीं। सारा दिन ऐसे ही निकल गया। दूसरी रात सोने की कोशिश की। थोड़ी बहुत आँख लगी तो दिन चढ़ गया। सर्दी के दिन थे और दोपहर को कुश्ती थी। दंगल देखा नहीं, मुझे आवाज दी गयी तो साथियों ने मुझे लंगोट कसवाया। हमारे हाथ मिलवाये गये तो पता नहीं उस पहलवान ने क्या दाँव मारा हम जमीन पर गिरकर सामने खड़े हुए तो मुसंब ने कहा तुम हार गये हो। मैंने मेहरू की तरफ देखा—क्या यह सच कर रहा है? उसने कहा हाँ, तेरा कन्धा लग गया था। हम मुँह लटकाये आ गये और दूसरे दिन गाड़ी में सवार हो पंजाब की ओर चल दिये।

पत्नी से अलग होना

कलकत्ता से वापस गाँव आकर मेरे मन में कई तरह के विचार आये। कभी पत्नी को छोड़ देने का विचार तो कभी उसे जान से मार देने का विचार। उसको छोड़ने का विचार भी मारने से कम दुखदायी नहीं था। मुझ में उस समय इतनी हिम्मत भी नहीं थी कि मैं अपनी ससुराल वालों से कहूँ कि सम्भालो अपनी लड़की, मुझे इसे नहीं रखना क्योंकि यह कुलटा है। वह बहुत ही शरीफ लोग थे तथा मुसीबत में उन्होंने मेरे माँ-बाप से ज्यादा साथ दिया था। साथ ही ननिहाल की तरफ से रिश्तेदारी भी थी।

पर आज मैं सोचता हूँ तो पत्नी भी निर्दोष लगने लगती है क्योंकि कसूर तो उन लोगों का है जिन्होंने एक जवान लड़की एक बच्चे के साथ ब्याह दी और दूसरा कसूर है गरीबी का। जब वह बच्चा जवान हुआ तो गरीबी ने उस बेचारी को उससे दूर कर दिया। पर उस समय तो वह मुझे दुश्मन नजर आती थी। मैंने चाचा निरंजन सिंह से बात की और कहा कि सारी बातों पर तो पर्दा रह जाएगा अगर इसे मार दें। मेरी तो ससुरालवालों के सामने जाकर ऐसी बात करने की हिम्मत ही नहीं पड़ती। चाचा बड़ा लड़ाका था और आगे चलकर बताऊँगा कि कुछ आदमियों के साथ मिलकर वह एक कत्ल भी कर चुका था। कहने लगा—अपन यह पाप न करें। तुझमें ससुरालवालों से बात करने की हिम्मत नहीं है तो तू चुप रह। अपन इसे इसके गाँव छोड़ आते हैं और सन्देश भेज देंगे कि हम इसे नहीं रखेंगे। अपनी तरफ से तो उसने बड़ी सही बात की, पर इस तरह वे चुप करके थोड़ी ही बैठ जाएँगे। खैर, मैंने मन से फैसला कर लिया कि मुझे तो अब इसके साथ रहना नहीं, जो होगा देखा जाएगा।

चाचा वाली बात पर अमल किया गया पर ससुराल वाले उसे फिर हमारे घर छोड़ गये और कह गये कि शादी के बाद लड़की माँ-बाप की नहीं, ससुराल

वालों की होती है। इस जद्दोजहद में, सोच विचार में छह महीने लग गये। पर मैंने तो गाँव पहुँचकर सप्ताह भर में ही पक्का फैसला कर लिया था और अपनी पहलवानी की तरफ लग गया था। उन्हीं दिनों में मैंने पंजाब के पाँच-छह नामी पहलवानों के साथ मेलों में कुश्तियाँ भी लड़ी। मेरे घर वाले और गाँव वाले सभी बहुत खुश थे। हमारे गाँव के पास ही महिसमपुरे का जस्सा सिंह पहलवान होता था। मैं उसके साथ अभ्यास करता था। जस्सा सिंह बड़ा गोरा और नीली आँखों वाला, बिल्कुल कश्मीरी पहलवान लगता था। जब मैं अभी सिंगापुर नहीं गया था, यह हमारे गाँव के बीच से रोज साईकिल पर सवार होकर गाँव में एक पहलवान के साथ अभ्यास करने जाया करता था। मैं इसके गाँव गया और अभ्यास करने की इच्छा जाहिर की। कहने लगा—तुम्हारे गाँव वाली तरफ एक कुएँ के पास अखाड़ा बना लेते हैं। तुम वहाँ अभ्यास करने आ जाया करना। मैंने कहा ठीक है।

हमने पहले दिन अभ्यास किया तो जस्सा सिंह दो तीन पकड़ मारकर ही बस कर गया क्योंकि कई दिन से उसने अभ्यास छोड़ा हुआ था और मेरे गुरु के हिसाब से इसको सालभर लगेगा इतना तगड़ा होने में, जितना यह है। पर एक महीने में ही जस्सा सिंह मेरे साथ बहुत बढ़िया अभ्यास करने लगा। फिर हम अखाड़ा हमारे गाँव के एक कुएँ के पास ले गये क्योंकि जस्सा के गाँव वाले जाट ने अखाड़ा खोद के फसल बो दी थी।

इस अखाड़े में एक सैदपुर का लड़का भी अभ्यास करने आ जाता था और दोनों मेरा अभ्यास बढ़िया ढंग से करवाने लगे थे। गाँव आकर मैंने पहली कुश्ती घुक गुलालीपुरिए के साथ लड़ी। गाँव आये अभी दो महीने ही हुए थे कि जब्बोवाल का मेला देखने चले गये। वहाँ कुश्तियाँ जरूर होती थी और मेले की खास रौनक कुश्तियों के कारण ही थी। यहाँ एक सन्त का डेरा था। इस सन्त को लोग बड़ा मानते थे। मैं और जस्सा सिंह कुश्तियाँ देखने जा पहुँचे। मैं तो पहलवानों को जानता नहीं था, जस्सा सिंह ही मुझे बताता जा रहा था कि कौन कितना तगड़ा है। उस मेले में दो तगड़े पहलवान सिंह थे घूक तथ बंता सिंह। मैंने कहा जो भी फेरी पर निकलेगा, उससे लड़ना है। घुक पहलवान अखाड़े में छलाँगें मारता हुआ आया। सबका ध्यान उसकी ओर खिंच गया।

तभी एक सज्जन मेरे पास आये और पूछा—कौन-सा गाँव है तेरा पहलवान।

मैंने कहा—जी, धरमूचक्क।

—घूक के साथ कुश्ती हो जाए फिर!

मैंने कहा मुझे तो फेरी वाले के साथ लड़ना है।

इतने में सन्त भी अखाड़े का चक्कर लगाने आ गये और पहलवानों को आशीर्वाद देते हुए मेरे पास आये। उनके साथ मेरे नाना लछमण सिंह भी अगुवाई करने वालों में थे। सन्त ने मुझे आशीर्वाद दिया और कहा सारे लोग घुक-घुक करते हैं जवान, घुक के साथ ही कुश्ती दिखा दे!

मैंने कहा जी, मैं तो फेरी निकालने वाले से ही लडूँगा।

सन्त ने कहा—आज फेरी घुक की है क्योंकि बंता सिंह कुछ अस्वस्थ है। मैं हाँ कहने ही लगा था कि नाना बीच में ही बोल पड़ा—सन्तों को ना नहीं करते।

मैंने कहा—ठीक है, मैं कुश्ती लडूँगा।

कुश्ती शुरू हुई। घुक का कद काफी छोटा था, पर था बड़ा गठीला पहलवान। वह मुझे दाँव लेने लगे तो मैं उसे पकड़ लेता, पर वह मेरे नीचे से निकल जाए। मैंने उसे कई बार पकड़ा, पर कुश्ती बराबर छुड़ाई गयी। आसपास के गाँवों वाले बड़े खुश हुए। लोगों ने काफी रुपये मुझे ईनाम में दिये। कहने लगे—वाह भई पहलवान! इन गाँवों की लाज रख ली।

मेरा हौसला और भी बढ़ गया, जब लोगों ने बताया कि घुक तो पंजाब के नामी पहलवानों में एक है।

इसके बाद, ब्यास पार दुआबा में एक त्यौहार पर सुच्चा सिंह मीएंविंडिए के साथ कुश्ती हुई। यह पहलवान भी घुक की ही टक्कर का था पर उससे ऊँचा था। कुश्ती इसके साथ भी बराबर रही, पर इसने मुझे रगड़ा बहुत। इसके एक महीने बाद इसके गाँव के पास खडूर साहिब में मेरी एक दंगल में फिर इसके साथ कुश्ती हुई। मैंने इस मुकाबले के लिए बड़ी तैयारी की थी। छठी पातशाही श्री हरगोविन्द जी का, सुना है, खडूर में कुश्तियों का अखाड़ा होता था। मैंने सोचा इस पवित्र धरती पर मुझे सुच्चा सिंह को जरूर रगड़ना है। और उसने तैयारी की थी कि मुझे हराकर गाँव वाला कें से अपनी 'बल्लेबल्ले' करवानी है।

खडूर साहिब हमारे गाँव से दूर है, इसलिए हम कुश्तियों से एक दिन पहले गाँव नागो के अपने रिश्तेदारों के यहाँ जा ठहरे और मुकाबले वाले दिन खडूर साहिब पहुँचे। लोगों की बहुत भीड़ थी। दंगल में मेहरू बाणिया भी आया था। छोटी कुश्तियों के बाद हमारे मुकाबले शुरू हुए। मैनें पहले हमले में ही सुच्चा सिंह को आगे गिरा लिया क्योंकि मैं तो मन में धारकर ही आया था कि इसे रगड़ना है। पर वह थोड़ी देर नीचे बैठकर निकल गया। मैंने उसे फिर दूसरी बार पकड़ लिया। बड़ी कोशिश की उसे रगड़ने की, पर वह दूसरी बार भी मेरे नीचे से निकल गया। थोड़ी देर सामने-सामने लड़े तो मेहरू आदि ने कुश्ती छुड़ा दी। कहने लगे अब इसका फैसला

नहीं होगा।

इस कुश्ती के बाद मुझे खडूर का एक जाट सरसरी तौर से मिला। कहने लगा तूं तो अभी लड़का है, यह तो पुराना घुटा हुआ है। तू अच्छी तरह दाँव पेंच सीख कर अखाड़े में उतरेगा तो तेरी टक्कर का पहलवान सारे हिन्दुस्तान में नहीं मिलेगा। मैंने कहा जी, मैं जरूर दाँवपेंच सीखने की कोशिश करूँगा। इसके बाद नंजो भैल के साथ जंडियाला गुरु में कुश्ती हुई। यह पहलवान पंजाब का एक नम्बर का पहलवान था। इसके साथ भी जब कुश्ती बराबर रही तो लोगों ने मुझसे उम्मीदें बाँध ली कि यह लड़का गंडासिंह जौहल की तरह देश का नाम चमकाएगा।

सूरती खुआली वाले के साथ मेरी टाहली साहिब में कुश्ती हुई तो हम दोनों गुत्थम गुत्था हो गये। पहला वार उसने किया। उसे पता नहीं था कि मैं फ्री-स्टाइल भी लड़ता हूँ। दो-चार मुक्कों के बाद आयोजकों ने हमारी कुश्ती छुड़ा दी। आखिरी कुश्ती (देशी) भागोवाल में हुई। टाइगर जोगिन्दर सिंह भी आया था। मुझे तो वह पहले से ही जानता था। मेरी कुश्तियों की बातें सुनकर बड़ा खुश हुआ। उसकी कुश्ती कोहले पहलवान के साथ हुई तथा वस्सन सिंह की सुच्चे मीएंविंड वाले के साथ। वस्सन ने सुच्चे को चित कर दिया, पर कोहले को जोगिन्दर से छुड़ा लिया गया। मेरी और मेहरू की कुश्ती हुई। मेहरू क्योंकि कलकत्ता से भी मुझे जानता था, आयोजकों ने आकर कहा कि मेहरू बाणिया वाला तुमसे लड़ना चाहता है, कुश्ती करनी है तो बताओ।

मैंने कहा—लडूँगा।

अन्दर गाँव में गये तो पता लगा यह तो मेहरदीन की तरफ से नूरा कुश्ती लड़ने का न्यौता था। खैर, यह दिखावे की कुश्ती हम लड़े। दूसरे दिन कुएँ पर नहाते हुए सभी पहलवानों ने मुझे और टाइगर को फ्री-स्टाइल की प्रदर्शनी करने के लिए कहा। हमने थोड़े बहुत दाँवों का अभ्यास किया।

घर की खींचोतान से छुटकारा पाने के लिए बाबा ने एक दाँव बताया। कहने लगे तू सिंगापुर चला जा, फिर जो होगा देखा जाएगा। मैंने एक एलान कर दिया कि मैं हमेशा के लिए सिंगापुर जा रहा हूँ। यह कहकर मैं सिंगापुर चला गया। बाद में छह महीने बाद एक चिट्ठी आ गयी कि बचनो मायके चली गयी है और उन्होंने उसे कही और बिठा दिया है। उसके कुछ वर्षो बाद उसकी मौत हो गयी।

मैं आपको चाचा निरंजन सिंह के बारे में बताने वाला था। यह तो पहले ही बता चुका हूँ कि वह बड़ा लड़ाकू था। सिंगापुर रहते हुए जब मैंने हैप्पी वर्ल्ड में कुश्ती लड़ना शुरू किया तो इसकी दोस्ती दुलचीपुरिए दारा सिंह के साथ हो

गयी। दोनों को खाने-पीने का शौक था। शराब के अलावा नशेवाल चण्डू वगैरा भी लाते थे। सिंगापुर में चीनियों को चण्डू का सूटा मारने की बड़ी आदत है। वही इन्हें लग गयी। अब तो याद नहीं क्यों, पर एक झगड़े में यह दोनों बन्द भी हुए थे तथ इन्हें बाबू रामदरश ने छुड़ाया था। दुलचीपुरिए के दो भाई थे इंदर सिंह और दलीप सिंह। दलीप सिंह भी सिंगापुर में रहता था, पर जब वह पंजाब गया तो उसका रिश्तेदारों से झगड़ा हो गया। झगड़ा इतना बढ़ा कि दलीप सिंह की मौत हो गयी। यह खबर सुनकर दारा सिंह को गाँव जाना पड़ा। केस बना, विरोधी पक्ष वाले साफ बरी हो गये। वह भी इनके चाचा-ताऊ के पुत्र ही थे। उनमें से एक का नाम तो मैं भूल रहा हूँ पर दूसरे का नाम सरदारा सिंह था। बरी होने के बाद भलवान को धमकियाँ देने लग गये। इंदर सिंह चाहता था कि उससे बदला लिया जाए।

एक दिन मेरा चाचा निरंजन सिंह और हमारे गाँव का लड़का अनोख सिंह पहलवान से मिलने दुलचीपुर गये। सभी ने शराब पी रखी थी कि आगे तालाब में भैंसों को नहलाता सरदारा सिंह मिल गया। इन्दर सिंह के उकसाने पर इन चारों जनों ने उसे तालाब में डुबोकर मारने का कार्यक्रम बना लिया। पर वह भी बड़ा जीवट का आदमी था। निरंजन सिंह को तो वह ले ही डूबता, अगर उसे कृपाणों और कुल्हाड़ियों से न मारते। उसे मारकर और तालाब में ही दबाकर चाचा आदि तो गाँव वापस आ गये। भलवान चला गया अपनी बहन के गाँव। यह लड़ाई दुलचीपुर के लोगों ने छतों पर चढ़कर देखी, पर किसी ने छुड़ाने की कोशिश नहीं की। सुना है गाँववाले दिल से चाहते थे कि दोनों धड़े आपस में ही लड़ मरे।

सरदारा सिंह के भाई ने पुलिस बुला ली। इन्दर तो गाँव से पकड़ा गया और भलवान अपनी बहन के गाँव से । पुलिस ने पत्तेबाजी खेली। पहलवान को हथकड़ी नहीं पहनाई और वायदा माफ गवाह बनाकर उससे चाचा वगैरा का पता पूछ लिया। क्योंकि वैसे तो इन्हें कोई जानता नहीं था ओर ये पहली बार ही दुलचीपुर गये थे।

हमारे गाँव वाले बताते हैं कि जब आधी रात को छापा मारकर पुलिस ने निरंजन और अनोखसिंह को पकड़ लिया तो थानेदार ने सिपाही को हुक्म दिया कि वह भलवान को हथकड़ी पहनाए क्योंकि पुलिस का केस पूरा हो गया था। यह मुकदमा जब अमृतसर सैशन जज के पास आया था तब मैं रंगून से कलकत्ता होता हुआ गाँव पहुँचा था। फरवरी या र्माच 1950 का महीना होगा। हुक्म वाले दिन मैं भी मुकदमा सुनने कचहरी गया था। चाचा निरंजन सिंह और अनोख सिंह

के केस की पैरवी हमारा बाबा कर रहा था और दारा सिंह व इन्दर सिंह के केस की पेरवी उनकी बहन कर रही थी। अनोख व निरंजन की शिनाख्तें गवाहों से ठीक न हो सकी, इसलिए ये दोनों बरी हो गये। दारा सिंह को फाँसी और इन्दर सिंह को बीस वर्ष की कैद हुई। अपील के बाद भी सजा कायम रही तब रहमदिली की अपील की गयी।

मैं वापस सिंगापुर पहुँच गया था, जब बाबू रामदरश ने लोगों से दारा के उत्तम चरित्र के बारे में दस्तखत कराये थे। हजारों लोगों की ओर से राष्ट्रपति से अपील की गयी कि पहलवान को माफ किया जाए। फाँसी की सजा कम होकर बीस साल कैद रह गयी और वह भी अच्छे बर्ताव के लिए, अफसरों की फरमाइशों पर मुख्यमन्त्री भीमसेन सच्चर के मशवरे-सदका केवल 6 साल ही भोगनी पड़ी।

1956 में पहलवान की रिहाई हो गयी। बहुत लोगों को यह गलतफहमी थी कि ये केस मेरा था। दोनों का नाम एक होने के कारण यह भूल-भुलैया बनी रही। मेरे कुछ विरोधी पहलवानों ने दारा सिंह असली-नकली का नारा भी लगाया और कुश्ती के चैलेन्ज भी किए। आखिरी मेरी उसके साथ दो कुश्तियाँ हुई, एक बम्बई और एक दिल्ली में। दुलचीपुरिए के साथ ये कुश्तियाँ 1962 की गर्मियों में हुई थी और मैं दोनों बार आसानी से जीत गया था। फिर हमारा भाईचारा शुरू हो गया। मैंने उसे एक दो फिल्मों में काम भी दिलवाया। उसने एक फिल्म 'सैमसन', जिसमें मैं सैमसन का रोल कर रहा था, एक जंगली बनकर मुझसे लड़ाई की थी। दुलचीपुरिया उम्र में मुझसे कोई दस साल बड़ा था।

मेरी दूसरी सिंगापपुर यात्रा

मैं सन् 1950 के अन्त में फिर सिंगापुर पहुँच गया। पंजाब में लड़ी कुश्तियों ने मेरा हौसला बढ़ा दिया था और मैंने अव्वल दर्जे का पहलवान बनने के लिए जद्दोजहद शुरू कर दी थी। अभ्यास पथरू पहलवान के अखाड़े में ही होता था। इन्हीं दिनो मेरी मुलाकात पहलवान सौदागर सिंह से हुई। यह लड़का पंजाब के फिरोजपुर के गाँव कसोआने का रहने वाला था और वजन उठाता था। इसको मलेशिया के एक छोटे से पहलवान टाइगर अहमद ने फ्री-स्टाइल कुश्ती लड़ने की लत डाल दी थी। जब यह मुझे मिला, एक-दो कुश्तियाँ लड़ भी चुका था। मैंने कहा तुम अखाड़े में अभ्यास करने आया करो। देशी कुश्ती सीखनी बहुत जरूरी है, फ्री-स्टाइल तो बाद की बात है।

वह मेरी बात मान गया और थोड़े ही दिनों बाद हमारी दोस्ती हो गयी। फिर हमने एक साथ ही रहना शुरू कर दिया। सुबह के व्यायाम के बाद सौदागर तो काम पर चला जाता था और मैं निठल्ला सोता रहता था या अँग्रेजी पढ़ने की कोशिश करता रहता था। एक कहावत है, जो किसी हद तक ठीक भी है कि मल (ताकत) और मतीरा सोते हुए ही बढ़ता है। लगता है किसी विद्वान मलवई की कही कहावत है क्योंकि मल्ल और मतीरा शब्द उधर ही बोले जाते हैं।

सौदागर का काम भी कोई मुश्किल नहीं था। वह एक बस कम्पनी में ड्राइवर था और बाद में जब अच्छा ताकतवर बन गया तो इसने भी काम छोड़कर केवल पहलवानी करनी शुरू कर दी। आज, हम दोनों तो पहलवानी छोड़ चुके हैं, पर हमारी दोस्ती ज्यों की त्यों कायम है।

मेरे एक साल हिन्दुस्तान रहने के कारण तरलोक सिंह मलेशिया का चैंपियन बन बैठा और उसके अखबारों में इश्तहार निकलने शुरू हो गये कि कोई भी पहलवान इससे लड़ ले! कुआलालम्पुर एक छोटे-से मेले में मैं और सौदागर पहुँचे गये। सौदागर

की कुश्ती मस्सा सिंह के साथ हुई और मेरी तरलोक सिंह के साथ। तरलोक समझता था कि अब वह तगड़ा निकलेगा और मैं समझता था कि मैं तो पंजाब के उम्दा पहलवानों के साथ कुश्तियाँ लड़ आया हूँ यह क्या चीज है, और बात भी यही हुई।

मैंने तरलोक को पकड़कर गिरा लिया, नीचे जब उसे चित करने का रुख किया तो सात-आठ मलवइयों ने, जो तरलोक के हिमायती थे, मुझे ऊपर से आकर पकड़ लिया। दौड़े-दौड़े आये, कहते हुए, पकड़ लो इस पट्ठे को, हमारे पहलवान से लड़ने आया है। मैं झगड़े से डरता हुआ तरलोक को छोड़कर परे हो गया। अचानक शोर मच जाने से ध्यान भी भंग हो गया। बाद में वहाँ के लोगों ने कहा कि गुस्सा और गम न करना, आपने एक तरह से तरलोक को चित कर दिया है। मैंने कहा कुश्ती तो बराबर गिनी गयी, चित कैसे कर लिया। इसपर वह कहने लगे—इस मेले का रस इन शराबियों ने खराब कर दिया है। अब आप सालाना मेले पर आना मजाल है वहां कोई शोर कर सके। मैंने कहा अभी तो छह महीने पड़े हैं। जब वह मेला आएगा, देखी जाएगी। मुझे तो तरलोक को उससे पहले ही चित करना है।

इसके बाद मैं और सौदागर सिंह पीनारा और मलाया के और कई शहरों में कुश्तियाँ लड़ने गये, पर तरलोक कहीं न मिला। वह जानबूझ कर कन्नी कतराने लगा था। हम घूम घुमाकर वापस सिंगापुर आ गये।

हमें कुआलालम्पुर के कुछ लोग सालाना मेले का न्यौता देने आये। हमने पहुँचने का वायादा कर लिया, पर उनको कहा कि हमारे पहुँचने की खबर गुप्त रखें। हम बिल्कुल दिन के दिन पहुँचेंगे ताकि तरलोक सिंह को वहाँ से भागने का कोई बहाना न मिले। उन्होंने कहा—ठीक है, हम अखबार में भी आपका नाम नहीं देंगे। वाकई हमारा अन्दाजा ठीक निकला। तरलोक ने सोचा कि हम कुआलालम्पुर नहीं पहुँच रहे, सो उसने मेला कमेटी से पहुँचने का वायदा कर लिया। उसका नाम अखबारों में भी आता रहा, पर उसे पता तब लगा जब हम भरे मेले में पहुँचे। मैं, सौदागार और हमारा एक दोस्त कार से सुबह सवेरे सिंगापुर से रवाना हुए और दोपहर को कुआलालम्पुर पहुँच गये। तरलोक सिंह को जब हमारे आने का पता लगा तो वह ना भागने लायक रहा और न ही उसका कुश्ती लड़ने का हौसला था। उसका आदमी हमारे पास एक सन्देश लेकर आया कि कुश्ती बराबरी पर लड़ लो। मैंने कहा आज तो फैसला ही होना है। कमेटी वालों ने एलान किया कि तरलोक सिंह और दारा सिंह में जो भी कुश्ती जीतेगा, वह मलेशिया का चैंपियन

कहलायेगा।

अखाड़ा तैयार हो गया। तरलोक के सन्देश ने मुझे और ताकतवर बना दिया। जब पहलवान को पता लग जाए कि सामने वाला ज रक गया है तो हौसला तो अपने आप बढ़ जाता है। साथ ही उस समय मेरी तैयारी भी बहुत थी।

हम जब फेरी पर निकले तो मुझे महसूस हो रहा था कि मेरे पाँव धरती पर नहीं पड़ रहे हैं बल्कि हवा में उड़ रहे हैं। तरलोक का कुश्ती से पहले फिर सन्देश आया कि कुश्ती लड़ते हुए अगर एक बार तुम नीचे आ जाओगे, तो तरलोक कुश्ती लड़ने को तैयार है, नहीं तो वह नहीं लड़ेगा, चाहे तुम ऐसे ही चैंपियनशिप ले जाओ।

मैंने सोचा कि ऐसे चैंपियनशिप ले जाने में कोई बात नहीं बनती। बस, मैंने एक बार नीचे आने का वायदा कर लिया। इन सब बातों से मैं और भी तगड़ा हो गया।

कुश्ती शुरू हुई और तरलोक को जल्दी थी कि मैं नीचे आऊँ, लेकिन मैं चाहता था कि इसको थोड़ा थका लूँ, फिर नीचे आऊँ। वैसे मुझे भरोसा हो गया था कि नीचे आने पर भी यह मुझे चित नहीं कर सकेगा। मैं थोड़ा लड़ने के बाद नीचे बैठा तो उसने चित करने की पूरी कोशिश की, पर उस दिन मैं उससे इतना ज्यादा ताकतवर निकला कि मुझे लगा जैसे मैं कुश्ती नहीं उससे अभ्यास करवा रहा हूँ।

मैं उसे चेतावनी देते हुए उठा और उसके सामने खड़ा हो गया। बस, फिर क्या था, तरलोक तो खड़ा-खड़ा ही ठण्डा पड़ गया था। मैंने उसे कडंगा मारकर गिरा दिया। लोगों में बल्ले-बल्ले हो गयी। सौदागर ने ठाकुर को चित कर लिया। बस, हम खुशियाँ मनाते और गपशप करते सिंगापुर को रवाना हो गये। यह कुश्ती का कार्यक्रम 1951 की बैशाखी के दिन हुआ था।

हमें सिंगापुर पहुँचे अभी कुछ दिन ही हुए थे कि गुरु हरनाम सिंह हिन्दुस्तान से सिंगापुर पहुँचे। उनकी आदत थी कि महीने में कम से कम एक दंगल तो होना ही चाहिए। इन्हीं दिनों ग्रेट वर्ल्ड का अखाड़ा तो बन्द हो चुका था, पर हैप्पी वर्ल्ड में एक वली उक्स नाम का ठेकेदार कुश्तियाँ करवाता था। उसका विरोधी ठेकेदार होने के कारण यह पहलवानों की कम परवाह करता था। फिर भी महीने में एक या दो कुश्तियाँ मेरी हो जाती थी और खुराक खाने के पैसे मिल जाते थे।

एक ठेकेदार गुरुजी से किसी बात पर नाराज था, इसलिए उनको दंगल में नहीं लड़ाता था, इसलिए गुरुजी ने देशी दंगल सिंगापुर में करवाने का जुगाड़ किया।

एक पहलवान भजन सिंह, बंता सिंह छत्तोइए के साथ सिंगापुर आया था। गुरुजी ने कह-कहाकर उसे मेरे साथ कुश्ती लड़ने के लिए मना लियां

सिंगापुर व कुआलालम्पुर के बीच देशी कुश्तियों के प्रचार का साधन गुरुद्वारे ही थे। हर रविवार को लोग गुरुद्वारों में एलान कर दो। बस, सबको दो सप्ताह में पता लगा जाता था कि फलानी बात, फलानी जगह पर हुई है।

देश दंगल तो पंजाब की तरह खुले मैदान में ही होते हैं। पहलवान हरनाम सिंह का तो कुआलालम्पुर की तरह फेरी निकालने का कार्यक्रम था। मेरी व भजन की कुश्ती का प्रोग्राम बनाया गया। तीन सप्ताह का समय रखा गया। कुश्ती वाले दिन कुआलालम्पुर की तरह टाइगर जोगिन्दर तथा अर्जुन सिंह पहलवान अखाड़े में आ गये। कुछ छोटी कुश्तियों के बाद मेरी और भजन की कुश्ती हुई। वह तो मुझ से बहुत कमजोर निकला। दो मिनट भी नहीं लड़ पाया होगा। मैंने पकड़कर नीचे गिराया तो शोर मचाने लाग कि मेरा तो घुटना टूट गया है। मुझे कुश्ती का विजेता घोषित किया गया। पहलवान हरनाम सिंह, अर्जुन सिंह आदि पर गुस्सा हो गया कि मैं जब भी कोई कार्यक्रम बनाता हूँ तो तुम लोग बीच में आकर कड़ी घोलने लगते हो। अर्जुन सिंह ने कहा तूं हमारे साथ लड़ नहीं, जा और जाकर फेरी निकला।

गुरुजी ने फेरी निकाली। कपड़े भी पहन लिये, फिर पता नहीं क्या बात हुई टाईगर जोगिन्दर तथा अर्जुन सिंह के कुछ विरोधी सरदार गाँव ब्रह्मपुरा के थे, उनका लड़का स्वर्ण सिंह शौकिया मेरे साथ अभ्यास करने भी आता था। जब जोगिन्दर फेरी देने लगा तो ब्रह्मपुरियों ने मुझे आ घेरा। कहने लगे कि जोगिन्दर के साथ हाथ मिला लो। मैंने कहा कि हम तो गुरु-भाई हैं। उन्होंने जाकर गुरुजी से पूछा कि यह कुश्ती हो सकती है या नहीं? गुरुजी ने कहा कि अगर ये दोनों चाहें तो हो सकती है। इसमें पहलवानी के उसूलों का कोई उल्लंघन नहीं है। बस, फिर क्या था, वह लोग मुझे ले गये जोगिन्दर के सामने। कहने लगे तेरी फेरी दारा सिंह कबूल करता है। जोगिन्दर बोला लेकिन हम तो गुरु-भाई हैं। लोगों ने कहा—फिर भी यह कुश्ती हो सकती है।

यह सुनकर जोगिन्दर ने कहा—तो ठीक है, मैं तैयार हूँ।

उन्होंने कहा—आज नहीं, कुश्ती पूरी तैयारियों के साथ होगी। 40 दिन का समय रखकर कुश्ती तय कर दी गयी। हमारे हाथ मिलाये गये। मन ही मन मैं खुश था पर शर्म भी आ रही थी कि जोगिन्दर ने एक दिन मुझे दाँव सिखाते हुए कहा था तेरी कद-काठी अच्छी है, कहीं तगड़ा होकर हमारा ही रास्ता न रोकने

लग जाना। यह तो मजाक की बात हुई। खैर, 40 दिन बाद कुश्ती होनी थी। मैंने व्यायाम और बढ़ा दिया। ब्रह्मपुरियों ने मुझे उग्राही इकट्ठी करके दी घी, बादाम के अलावा नकद पैसे भी दिये। इन चालीस दिनों में गुरु जी को दस दिन मेरे साथ रहने का मौका मिला। फिर उनको आस्ट्रेलिया से फ्री-स्टाइल कुश्तियों का न्यौता आ गया और वह उधर चले गये। मैं और सौदागर सिंह पथरू पहलवान के अखाड़े में खूब अभ्यास करते रहे। एक दिन जोगिन्दर हमारे अखाड़े में आ गया। कहने लगा कुश्ती क्या लड़ना है, ऐसे ही अभ्यास कर लेते हैं। हम सभी हैरान कि अब क्या किया जाए? क्योंकि रिवाज के अनुसार अगर अखाड़े का सबसे तगड़ा पहलवान बाहर से आये पहलवान के साथ अभ्यास न करे तो डर गया समझा जाता है। अभी हम एक-दूसरे की ओर ही देख रहे थे कि पथरू पहलवान ने मसला हल कर दिया। कहने लगे—टाइगर पहलवान, पहले तो आपको यहाँ आना ही नहीं चाएिह था और अगर आ ही गये तो दारा दास को अभ्यास के लिए नहीं कहना चाहिए था। (पथरू पहलवान आखिर तक मेरे नाम के साथ दास ही लगाते रहे।) आज से 20 दिन बाद आपकी कुश्ती होने वाली है, लोग क्या कहेंगे।

जोगिन्दर ने कहा—पहलवान जी, मैं भी अभ्यास करना चाहता हूँ, क्या आप यह नहीं चाहते कि मैं भी अपनी तैयारी पूरी कर लूँ?

पथरू जी ने कहा—आप शौक से व्यायाम करें, अखाड़ा तो है ही व्यायाम के लिए, किन्तु आपके साथ दारा नहीं दूसरे लड़के अभ्यास करेंगे।

मैं खुश था कि मुझे एक शब्द भी बोलना नहीं पड़ा। जोगिन्दर दो दिन अभ्यास करने आया, फिर हट गया और गुरुद्वारे में कहना शुरू कर दिया कि दारा तो अपना ही पट्ठा है, उसने कुश्ती लड़ने के लिए हाथ नहीं मिलाया, उग्राही के लिए ऐसा किया है। यह कुश्ती-वुश्ती नहीं होनी और वाकई ही वह और अर्जुन सिंह पलवान कुश्ती वाले दिन से एक सप्ताह पहले ही पीनारा चले गये। कुश्ती वाले दिन संगत में गुरुद्वारे से एलान हो जाता है कि शाम को फलाने मैदान मैदान में कुश्ती होगी।

हम गुरुद्वारे पहुँचे तो पता लगा जोगिन्दर का कमेटी वालों का सन्देश था कि वह फ्री-स्टाइल कुश्ती लड़ने पीनारा जा रहा है और कुश्ती की बात वापस आने तक स्थगित रखी जाए। लोग थोड़े मायूस हुए और कहने लगे—कोई बात नहीं, तुम कुछ दिन और तैयारी कर लो। मैंने कहा जी, बहुत अच्छा! और तैयारी शुरू कर दी।

जोगिन्दर आदि तय दिन से चार-पाँच दिन बाद सिंगापुर आ गये। लोगों ने कुश्ती की अगली तारीख के बारे में पूछा तो कहने लगा—यह कुश्ती नहीं हो

सकती। वह तो अपना ही लड़का है।

इस बात से ब्रह्मपुरियों का अपमान होता था क्योंकि उन्होंने ही आगे होकर मेरे लिए उग्राही की थी। वे सारे मेरे पास आये और कहने लगे कि जोगिन्दर तो ऐसे कह रहा है। मैंने कहा—मैं तो कुश्ती के लिए तैयार हूँ।

उन्होंने कहा—अगर तुम सच्चे हो तो हमारे साथ चलकर जोगिन्दर के मुँह पर यह कह दो कि तुम कुश्ती के लिए तैयार हो, फिर कुश्ती हो या न हो, हमारी जिम्मेदारी खत्म हो जाती है। मैंने कहा—चलो।

वे पाँच-सात आदमी, मुझे साथ लेकर बड़े गुरुद्वारे पहुँच गये, जहाँ पहलवान रहते थे। फतेह बुलाकर और रस्मी हालचाल पूछने के बाद ब्रह्मपुरियों ने कहा—जोगिन्दर पहलवान आज तक सिंगापुर में जितनी भी कुश्तियाँ तय हुई हैं, उनके फैसले हुए हैं, अब इसका भी फैसला होना चाहिए, नहीं तो यह पहलवानों के लिए बहुत अपमानजनक बात होगी। तुम्हें कुश्ती लड़ने से एतराज है पर दारा सिंह तो आज भी कुश्ती लड़ने को तैयार है।

जोगिन्दर ने कहा आप लोगों ने इसको तो उग्राही कर दी, पर मुझे क्या दिया है?

लोगों ने कहा—तुम हमारे साथ चलो। तुम्हें भी उग्राही कर देते हैं।

वह बोला—मैं कोई मँगता नहीं, दंगलों में लड़ने वाला पहलवान हूँ। तुम लोग मुझे कुश्ती लड़ने की फीस 500 डालर दो।

लोगों ने कहा—भई, कुश्तियाँ तो मुफ्त होनी हैं, कोई टिकट थोड़ा लगना है जो तुम्हें 500 डालर दें।

थोड़ी बहस के बाद ब्रह्मपुरिए ने कहा जोगिन्दर पहलवान, सीधा कहदे कि तुम लड़ना नहीं चाहते। बहाने बनाने की क्या जरूरत है?

इस पर जोगिन्दर ने कहा, अगर मैं कह दूँ कि मैं कुश्ती लड़ना नहीं चाहता तो आप क्या करेंगे?

पंचायत वाले उठ खड़े हुए और मुझे कहने लगे—अच्छा भई दारा सिंह, तुम जाओं, मौज करो। हमें तुम पर कोई एतराज नहीं।

हम फतेह बोलकर गुरुद्वारे से घर को लौट आये। बिना कुश्ती लड़े ही लोगों में मेरा बोलबाला हो गया।

सन् 1951 के अन्त में मेरी फ्री-स्टाइल कुश्ती हैप्पी वर्ल्ड स्टेडियम में आस्ट्रेलिया के एक पहलवान चार्ली ग्रीनिज से हुई। सौदागर सिंह तथा कई और पहलवानों ने मुझसे कहा यह अँग्रेज रिंग में विरोधी पहलवान को गालियाँ बहुत

निकालता है।

मैंने कहा–मुझसे शर्त लगा लो अगर यह मुझे गाली दे तो?

कहने लगे–तुम क्या करोगे?

मैंने कहा–मैंने इसे खाली ही नहीं होने देना तो यह गाली कैसे देगा?

कुश्ती शुरू हुई। मैं इतनी तेज लड़ा कि चार्ली को अफरातफरी मच गयी पर फिर भी उसने मौका देखकर मुझे थप्पड़ मारा और साथ ही कहा भूखे भारतीय! बस, फिर क्या था। मुझे गुस्सा कुछ ज्यादा ही आ गया। उस हरामजादे ने तो मेरे देश को ही गाली दे दी थी। मैंने उसके पीछे आकर उल्टी चोट मारी और नीचे गिराते ही चार्ली को चौड़ा करके सवारी गाँठ ली (सवारी ऐसा दाँव है अगर लग जाए तो नीचे पड़े पहलवान की जान कब्जे में आ जाती है) इस दाँव को देशी कुश्ती में भी पूरा इस्तेमाल नहीं करने दिया जाता क्योंकि इससे नीचे पड़े पलवान को ढहने का मौका ही नहीं मिलता। कन्धों में दर्द अलग तथा साँस रुकने लगती है। चार्ली की तो 'बस बस' हो गयी थी, पर रैफरी केवल फ्री-स्टाइल का पहलवान था। उसे इस दाँव का पूरा ज्ञान नहीं था। चार्ली की आँखों में खून उतर आया। उसने इशारे से रैफरी को दाँव छुड़ाने को कहा। रैफरी ने सीटी बजायी तो मैंने दाँव छोड़ दिया। रैफरी के साथ बिना कोई बात किये चार्ली अपना गाउन और कपड़े उठाकर नीचे उतर गया। लोगों ने उसकी बहुत 'थू थू' की। इसके बाद पता नहीं चार्ली का क्या बना कि उस बेचारे ने किसी को गाली दी है या नहीं।

इन्हीं दिनों मैंने अपेन छोटे भाई सरदारा सिंह रन्धावा को सिंगापुर बुला लिया। सोचा था कि यहाँ ऊँची तालीम हासिल करके किसी अच्छी नौकरी पर लग जाएगा, क्योंकि पंजाब की पढ़ाई, और वह भी गाँवों की, बस पूछो ही कुछ न! दसवीं में फेल होने के कारण उसका दिल भी सिंगापुर के लिए उतावला हो गया।

वह सिंगापुर पहुँचा ही था कि मुझे श्रीलंका से फ्री-स्टाइल कुश्तियों के लिए बुलावा आ गया। मैं तो श्रीलंका आ गया तो पीछे सरदार सिंह को पहलवान हरनाम सिंह ने कुश्तियों का चस्का लगा दिया। दरअसल पहलवान हरनाम सिंह की यह आदत थी कि कोई भी कद-काठी वाला लड़का मिले, उसको कुश्ती के अभ्यास में लगा देते थे। अजीत रंधावे का ही हमउम्र था। इन दोनों को इकट्ठा रखकर गुरु जी ने पहलवानी शुरू करवा दी और सरदारा की शिक्षा बीच में ही रह गयी।

मेरी पहली श्रीलंका यात्रा

लंका के बारे में गाँव के गणपत ब्राह्मण से बहुत बातें सुनी थी। शाम को उसकी दूकान पर खड़े या बैठकर मैं विशेष रूप से रामायण सुनने में मग्न हो जाता था हनुमान जी ने किस तरह सोने की लंका को आग लगाकर जला दिया! उस जगह को देखे बिना ही उसका आकार मन में छाया हुआ था। जब हमारा जाहज कोलम्बो में उतरा तो मुझे लंका को देखने की बड़ी उत्सुकता थी। पर कोलम्बो को देखकर मुझे लंका और मद्रास में कोई खास अन्तर नजर न आया। लोगों से पूछने पर पता लगा कि सोने की लंका का तो कहीं कोई चिन्ह्न नहीं, पर कोलम्बो से दूर जंगल में एक जगह है। वहाँ, कहते हैं, हनुमान जी संजीवनी बूटी लेकर आये थे और मूर्च्छित हुए लक्ष्मण को जीवनदान मिला था। और जहाँ समुद्र में पुल बनाया था, क्या उसके भी कोई चिह्न बाकी हैं? यह देखने हम समुद्र पर गये, पर तसल्ली नहीं हुई। आखिर यह समझकर चुप रह गये कि इतने युगों पुरानी बात है, पता नहीं अब तक धरती पर कितनी उथल-पुथल हुई होगी, अब वह लंका ढूँढ़नी मुश्किल है।

कोलम्बो में मेरी पहली कुश्ती आस्ट्रेलिया के पहलवान रे-गोल्डन के साथ हुई। मैंने कुश्ती जीत ली तो कुश्ती-प्रेमियों ने मुझे रिंग में से ही कन्धों पर उठा लिया और ड्रेसिंग रूम में ले आये। कोलम्बी शहर में मेरा नाम बड़ा मशहूर हो गया। कुश्तियों के ठेकेदार मि. डोनोवन इण्ड्रे बहुत ही खुशमिजाज आदमी थे। उनके कई तरह के व्यापार चलते थे। घोड़ों की रेस में भी उनका हिस्सा था। एक कार्निवाल यानी नुमाइशी मेला भी चलते थे। श्रीलंका में मेरी सबसे बड़ी जीत थी किंगकांग को हराने की। उस दिन तो भारतीय दीवानावार खुश थे। अगर पुलिस न छुड़ाती तो मेरे प्रशंसक तो मुझे ड्रेसिंग रूम में ले जाने के बजाय लंगोट में ही शहर को ले चले थे। कहते थे कि शहर में जुलूस निकालना है। लंका में इतनी

मशहूरी हुई कि एक तमिल फिल्मकार हमारे पास आया। वह मद्रास में एक फिल्म बना रहा था दि वर्ल्ड! उसमें वह कुश्तियाँ करवाना चाहता था।

दो महीने कुश्तियाँ लड़ने के बाद हम मद्रास पहुँचे क्योंकि मद्रास में भी एक ठेकेदार कुश्तियाँ करवाना चाहता था। मद्रास की कुश्तियों में कुछ दिक्कत आई तो मुझे लगभग एक महीना खाली बैठना पड़ा और इन्हीं दिनों में हमने फिल्म के लिए कुश्तियाँ लड़ दी।

मद्रास में मेरी कुश्तियाँ तुर्की के पहलवान अली रजाबे और तीन-चार अन्य पहलवानों से हुई जिनके नाम अब मुझे याद नहीं रहे। जब मद्रास में कुश्तियाँ शुरू हुई तो यहाँ भी श्रीलंका की तरह मेरी मशूहरी हो गयी। मैंने गवर्नर चैलेंज कप जीत लिया। लोग लगे दावतों पर दावतें देने। मद्रास और लंका में इससे पहले 1940-41 में फ्री-स्टाइल कुश्तियाँ हो चुकी थी। उन कुश्तियों में पहलवान हरबंस सिंह की बड़ी मशहूरी हुई थी। और लोग अक्सर मुझसे हरबंस सिंह का जिक्र करते थे। मैं हरबंस सिंह आदि को व्याक्तिगत रूप से नहीं जानता, पर सिंगापुर में एक किताब में उनकी फोटो देखी थी, जिसमें किंगकांग, सरदार खान, जारी खान के अलावा और भी कई पहलवानों के फोटो थे। उस समय मेरे मन पर सबसे ज्यादा असर करतार सिंह की तस्वीर ने किया था और अब प्रसिद्धि व लोगों की बातें सुनकर पहलवान हरबंस सिंह के वास्ते मेरे दिल में इज्जत बढ़ गयी थी।

मद्रास की प्रसिद्ध फिल्मी हस्तियाँ भी कुश्तियाँ देखने आया करती थी। उस समय की मशहूर फिल्म स्टार ललिता, पद्मिनी और रागिनी–तीनों बहनें तो कुश्तियों की दीवानी हो गयी थी। यहाँ तक कि हर दंगल में शामिल होने के कारण लोगों ने कहानियाँ बनानी शुरू कर दी थी कि ये लड़कियाँ दारा सिंह की पहलवानी खत्म करके ही छोड़ेगी। पर इसमें सच्चाई सिर्फ यह थी कि नमस्ते के अलावा हमने कभी कोई बात ही नहीं की थी। इन्हीं दिनों में ही सभी पहलवानों को एक स्टुडियो वालों ने चाय-पानी का निमन्त्रण दिया। यह था एशिया का सबसे बड़ा वाहुनी स्टुडियो। इसमें 17 फ्लोर और चार प्रोजेक्ट रूम थे और भी बहुत कुछ बना हुआ था। हमने पहली बार किसी फिल्म की शूटिंग देखी। एक सैट पर श्री प्रसाद की फिल्म में अंजलि देवी काम कर रही थी। और दूसरे पर एन.टी. रामाराव किसी धार्मिक फिल्म की शूटिंग कर रहे थे। स्टुडियों देखने के बाद स्टुडियो के मालिकों–श्री नागा रेड्डी तथा चक्रवर्ती के साथ चाय आदि पी।

मद्रास की कुश्तियाँ सन् 1952 में हुई थी। एक दिन हमें खबर मिली कि पहलवान हरबंस सिंह और ठाकर सिंह माड़ीवाला कुश्ती में भाग लेने आये हैं।

हमारा ठेकेदार था नारायण चेटियर। बड़े मीठे स्वभाव का आदमी था और मद्रास में ही इसका घर था। मैंने एक-दो बार इनके घर खाना भी खाया। अमीर आदमी था, पर खाना खाते समय पूरा परिवार फर्श पर बैठकर भोजन करता था। भोजन-भण्डार वाले कमरे की सफाई हद से ज्यादा थी। नारायण और एक-दो साथियों के साथ मैं पहलवान हरबंस सिंह को मिलने गया। एक होटल के कमरे में जब हम पहुँचे तो पहलवान हरबंस सिंह चारपाई पर लेटे हुए थे और ठाकर सिंह उसी चारपाई पर बैठे हुए थे। हमें साथ ले जाने वाले ने हमारा परिचय कराया। ठाकर सिंह के साथ मैंने हाथ मिलाया। पहलवान फिर लेट गया। मुझे यूँ महसूस हुआ कि हरबंस सिंह बड़े रूखे स्वभाव का आदमी है। हम थोड़ी देर रुके और ठाकर सिंह के साथ, गाँव के बारे में पूछताछ करके वापस चले आये।

इसके बाद कुश्तियों में पहलवान हरबंस सिंह के साथ और मुलाकातें हुई तो इनके बार में मेरा पहली मुलाकता वाला प्रभाव बदल गया। वह रूखे स्वभाव के बिल्कुल नहीं थे। जब मुझे पता लगा कि यह तो बहुत पढ़े-लिखे हैं तो मैं इनके निकट होता गया। इनकी ओर से भी मेरी निकटता का गहरा स्वागत हुआ। फिर तो एक अन्दरूनी आत्मीयता जैसी हो गयी, जो आज भी कायम है। इनके इन्सानियत के बारे में विचार व दृढ़ उसूलों का मेरे मन पर बहुत असर पड़ा। हमारी यह आत्मीयता, मैं समझता हूँ, इस करके भी चली आ रही है कि मुझे शौक है हमेशा कुछ न कुछ सीखने का और इन्हें वह हर आदमी अच्छा लगता है जो हेराफेरी छोड़कर साफ बातचीत करता हो।

पहलवान हरबंस सिंह का लड़का कश्मीरा सिंह भी, जो डबल एम.ए. कर चुका था, पहलवानी करता था। स्कूलों व कॉलेजों में नेशनल चैंपियनशिप जीतने के बाद कुछ फ्री-स्टाइल कुश्तियाँ भी लड़ी। पहले रामगढ़िया कॉलेज, फगवाड़ा में प्रोफेसर थे और अब फगवाडा से नौ-दस मील दूर एक कॉलेज में प्रिंसिपल हैं। इसने छोटी उम्र में ही बड़े-बड़े काम कर लिये। पढ़ाई और पहलवानी तो इसे विरासत में मिली थी। यह भी कारण हो सकता है छोटी उम्र में तरक्की करने का। पहलवान हरबंस सिंह जब 1952 में कुश्तियों में हिस्सा लेने आए तब 42-43 साल की उम्र होगी। दक्षिण में लड़कर 1953 में बम्बई पहुँचे तो फ्री-स्टाइल कुश्तियों का फेडरेशन बन चुका था, जिसका कर्ता-धर्ता, हाजी मुहम्मद मद्रास वाला था। फेडरेशन के तहत हिन्दुस्तान की चैंपियनयिशप यानी रुस्तमे-हिन्द के खिताब के लिए दंग शुरू हुए। इस दंगल में हिस्सा लेने वाले बहुत ज्यादा पहलवान थे। बम्बई के एक दंगल की, जिसमें मेरी और किंगकांग की कुश्ती हुई थी, पूरी दुनिया में बड़ी मशहूरी

हुई। अखबारों ने लिखा था कि इस दंगल में दर्शकों की उपस्थिति एक लाख के करीब थी। यह खबर पढ़कर टाइगर जोगिन्दर सिंह अमरीका से भागा-भागा हिन्दुस्तान दंगलों में हिस्सा लेने आया। बम्बई में किंगकांग के साथ पहली कुश्ती में मुझे चोट लग गयी और मैं कुश्ती हार गया। फिर उपरोक्त कुश्ती, जिसका मैंने जिक्र किया है, किंगकांग के साथ दूसरी कुश्ती थी जो मैंने जीत ली। बम्बई में भी दूसरे शहरों की तरह मैंने तीन-चार कुश्तियाँ जीती और कुश्ती के शौकीनों का हीरो बन गया। किंगकांग के साथ फिर कुश्ती हुई। चोट लगने के बाद लोगों ने मेरी सेहत के बारे में जानने की इतनी कोशिश की कि आखिर फेडरेशन की ओर से हाजी मुहम्मद को कहना पड़ा कि मैं कुछ दिनों के लिए बम्बई से बाहर चला गया हूँ। इस बात ने और चर्चा पैदा कर दी, लोग कहने लगे कि शायद मेरी मौत हो गयी है। बात क्या, शहर में केवल कुश्ती की ही चार्चा थी और जब एक महीने बाद मेरी किंगकांग के साथ दुबार कुश्ती हुई तो फेडरेशन वालों के पास दंगल शुरू होने से पहले, कुश्ती वाले दिन सुबह टिकट खत्म हो गये। इन कुश्तियों का बम्बई को ठेकेदार था—गुस्ताद ईरानी। उसने हाजी मुहम्मद के साथ मशविरा करके, गेट पर 10 रुपए प्रति व्यक्ति लेकर मैदान में बैठकर कुश्ती देखने की इजाजत दे दी,तो हजारों लोगों ने मैदान में बैठकर कुश्ती देखी।

यह कुश्ती होने से पहले हम ड्रेसिंग रूम में तैयारी कर रहे थे तो पहलवान हरबंस सिंह ने कहा कि उसकी कुश्ती 1940 में वोंगचांग के साथ हई थी तो बम्बई में सबसे ज्यादा भीड़ जुटी थी, पर आज तो हद से ज्यादा भीड़ है। इतने लोग तो कभी किसी दंगल में नहीं जुटे और न ही भविष्य में होंगे। इस कुश्ती में जब मेरी जीत हो गयी तो हमेशा की तरह जोशीले दर्शकों ने मुझे कन्धों पर उठाकर ड्रेसिंग रूम तक पहुँचाया। कपड़े बदलने के बाद मुझे जिस कार में फेडरेशन के सचिव मि. नोइल ने लेकर जाना था, वह पुराने जमाने की ब्यूक कार थी आठ सिलेण्डर कनवरटेबल। मैं जब कमरे से बाहर आया तो दर्शकों की इतनी भीड़ थी कि मुझे उनसे धक्कामुक्की करके कार तक जाना पड़ा। लोग पुलिस की भी परवाह नहीं कर रहे थे। आखिर नोइल ने कार चलायी। उसमें मेरे साथ जबरदस्ती बैठने वाले 30 लड़के थे। कई कार के बोनट पर तो कई मडगार्ड पर चढ़ गये थे। स्टेडियम से बाहर जाकर नोइल ने उनकी खुशामद की तब जाकर वह कार छोड़ने पर राजी हुए। यह था हाल उस दंगल के शौकीनों का। वैसे तो इस तरह के हादसे कई बार हुए थे, पर यह विशेष वर्णन योग्य इसलिए है कि एकान्त स्थान में जाकर हमने जब लड़कों को उतारा तो 30 की गिनती थी। हम हैरान थे कि

इस पुरानी कार में इतनी जान है जो 30 आदमियों और मुझे व नोइल को लेकर चल पड़ी।

अन्त में इस कार का इतिहास बड़ा दर्दनाक रहा। इस शक्तिशाली कार को हाजी मुहम्मद ने कुश्तियों के कार्यक्रम के बाद 1955 में लेने-देने में मेरे हवाले कर दिया। फेडरेशन की तरफ मेरा चार-साढ़े चार हजार रुपया निकलता था। उन्होंने कहा—तूम कार ले लो। मैंने सोचा—जाते चोर की लंगोटी ही सही और मैंने कार खरीद ली। मद्रास में एक सुनार श्री आनन्द मेरा दोस्त बन गया था और उससे मैंने शौकिया कार चलानी सीख ली थी। इसलिए मैंने ब्यूक ली और 10-15 दिन मद्रास कें मेरीना बीच पर चलाता रहा। मुझे सिंगापुर से कुश्तियों का न्यौता आ गया तो मैं कार अपने एक वाकिफ मद्रासी युवक (जिसका नाम अब याद नहीं, पर उसके पिता वकील थे) के घर कम्पाउण्ड में खड़ी करके सिंगापुर चला गया।

सिंगापुर में कुछ ज्यादा दिन लग गये और वही से हम जापान चले गये। बरसात के मौसम में कार बेचारी बाहर खड़ी रही। जब वापस आकर उसकी हालत देखी तो बड़ी तरस खाने लायक थी। टायर भी जंग लगकर खत्म हो गये थे। फिर भी मैंने सोचा इस पर थोड़ा-बहुत खर्च करके इसे पंजाब ले चलते हैं। जब मैंने सोचा—इस पर थोड़ा-बहुत खर्च करके इसे पंजाब ले चलते हैं। जब मैंने उस युवक को अपना इरादा बताया तो उसने कहा—मेरे पिता कार को कम्पाउंड में खड़ी करने का किराया माँगते हैं। मैंने कहा—एक तो कार बरसात में बाहर रख कर खराब कर दी और उस पर किराया! यह तो कोई इन्साफ नहीं। युवक ने कहा—मेरी तो पिता के सामने बोलने की हिम्मत नहीं। मैंने उसके वकील बाप को समझाने की कोशिश की, पर वह न माना और आखिर मैं यह कहकर कार छोड़ आया कि इसे कबाड़खाने में बेचकर किराया वसूल कर लो। वकील साहब इसके लिए भी तैयार नहीं थे, कहने लगे कबाड़खाने में इसका क्या मिलेगा! मैंने कहा अगर आपको कबाड़खाने से कुछ नहीं मिलना तो मिलना मेरे पास से भी कुछ नहीं। मुँह खोलो तो मक्खियाँ ही जाएँगी यह कहकर मैं पंजाब की ओर चल दिया। रुस्तमे हिन्द के खिताब का फैसला होने से पहले ही हरबंस सिंह कुश्तियों से संन्यास लेकर गाँव चले गये। ये दंगल हिन्दुस्तान के सभी बड़े शहरों में हुए थे। और निर्णायक दंगल 1954 के अप्रैल महीने में बम्बई में हुआ था। सभी पहलवानों में मैं और टाइगर जोगिन्दर अव्वल रहे और खिताब हासिल करने के लिए हमारा यह दंगल फेडरेशन का आखिरी दंगल था। जम्मू कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने चाँदी का एक भारी कप बनवाकर दिया था। यह कुश्ती मैं जीत गया और

रुस्तमे हिन्द बन गया। यह कप अभी भी मेरे पास है।

जिस दिन मैं चैंपियन बना, मुझे मलेशिया का शहर ईपू याद आया जहाँ मैं पहलवान बनने के लिए जद्दोजहद कर रहा था और हर रोज सोते समय भगवान से दुआ माँगता था कि हे भगवान, मैं तुझसे और कुछ नहीं माँगता, बस मुझे इतना बड़ा पहलवान बना दे कि मेरे देश के सब लोग मुझे जानने लगे।

मेरी तीसरी सिंगापुर-यात्रा

हिन्दुस्तान की चैंपियनशिप की कुश्तियों के समय सौदागर सिंह और अजीत सिंह भी हिन्दुस्तान आ गये थे। सौदागर सिंह और मैं इकट्ठे ही रहते थे। मेरा छोटा भाई सरदारा सिंह रन्धावा भी सिंगापुर से गाँव आ गया था। 1953 में अमृतसर में कुश्तियाँ हुई तो सरदारा ने भी इच्छा जाहिर की कि वह भी पहलवानी करना चाहता है। बड़ा दुबला-पतला था। मैंने कहा तेरी मर्जी है। फिर पूरी तरह अभ्यास शुरू कर दे। उसकी दाढ़ी भी आ गई थी। 1953 में उसने बाल कटवा दिये और एकचित्त होकर पहलवानी शुरू कर दी।

1955 में सौदागर और अजीत मेरे साथ ही सिंगापुर गये। हमने मलाया, ब्रिटिश, थोरन्यू और जापान में कुश्तियाँ लड़ी। जापान जाते समय ठेकेदार ने कहा, वह अजीत और सौदागर को साथ नहीं ले जा सकता क्योंकि ये छोटी कुश्तियों के पहलवान हैं। उसने टाइगर जोगिन्दर को भारत से बुलवा लिया। मेरे साथ फैसला हुआ कि जितने दिन मैं जापान में रहूँगा, वह अजीत व सौदागर को खर्चा देता रहेगा, तो ये दोनों सिंगापुर रहेंगे, पर वापस आने पर वह खर्चा देने से मुकर गया और इन्हें वापस हिन्दुस्तान भेजने को कहने लगा। हम तीनों गुस्सा होकर हिन्दुस्तान आ गये। यहाँ आने से पहले मैंने जितनी कुश्तियाँ लड़ी थी, सारी जीती थी। जापान में एशियन चैंपियनशिप रिकी डोजान से मैं एक बार हार गया था, पर दूसरी कुश्ती में कुआलालम्पुर में मैंने उसे जीत लिया था।

1956 में हिन्दुस्तान आकर फिर दंगल हुए। इन दंगलों में बॉक्सिंग का विश्व चैंपियन परीमो करनेरा हिन्दुस्तान आया। इस पहलवान का कद 6 फुट 10 इंच था। दिल्ली में 2 पहलवनों को हराकर इसने मुझे चैलेंज किया। मैंने इसे बड़ी मुश्किल से रिंग से बाहर फेंककर हटाया था। इन दिनों में पूरी तरह तैयार था और मेरा मन फिर से देशी कुश्तियाँ लड़ने को करता था। लेकिन फ्री-स्टाइल के ठेकेदार नहीं चाहते थे कि मैं देशी कुश्ती लडूँ। कहते थे—तुम हिन्दुस्तान के चैंपियन, इतना

ऊँचा नाम, अगर देशी कुश्ती बिगड़ गयी तो नाम खराब होगा, क्योंकि फ्री-स्टाइल कुश्तियों के लिए लोगों की भीड़ ज्यादा होती है तथा ये दर्शक वे नहीं जो मिट्टी की कुश्ती पसन्द करते हैं। खैर, मिसाल हमारे हक में थी या खिलाफ, जब मैं पूरी तरह से तगड़ा हो गया था तो देशी कुश्ती लड़ने की इच्छा मन में ही रह गयी। एक बार जब आस्ट्रेलिया का पहलवान बिल वरना, पहलवान केसर सिंह के साथ देशी कुश्ती अठारह मिनट लड़कर बड़ी मुश्किल से चित हुआ, तो मेरी देशी कुश्ती लड़ने की लालसा और बढ़ गयी। क्योंकि उस समय केसर सिंह देशी कुश्ती का एक नम्बर का पहलवान माना जाता था और मैंने बिल वरना को कोल्हापुर में दो मिनट में ही चित कर लिया था।

यह कोल्हापुर की कुश्ती भी अचानक हुई। फ्री-स्टाइल कुश्तियाँ होनी थी, पर तय दिन सन्देश आया कि सभी पहलवान देशी ढंग की कुश्ती लड़े। मैंने कहा—मुझे मन्जूर है, बिल वरना से पूछ ले। उसने कहा मैं भी देशी कुश्ती जानता हूँ और केसर सिंह से लड़ चुका हूँ।

कुश्ती हुई तो एक बार तो मैंने उसे पहली बार पकड़ते ही गिरा लिया। पर चित न हुआ। दूसरी बार डंडा तोड़कर गिरा लिया तो कोल्हापुर के दर्शक दंग रह गये। वहाँ के दो-तीन ठेकेदार मेरे पास आये, वे दंगल करवाने के लिए। मैंने कहा मैं तो तैयार हूँ, मेरे फ्री-स्टाइल वाले ठेकेदारों को मना लो, पर फ्री-स्टाइल वाले भला क्यों मानने लगे। कहने लगे—आज तो अखाड़ा कमेटी ने हमारा दंगल कैंसिल करने की धमकी दी थी तो हम मान गये, वरना हम देशी दंगल के झगड़ों में नहीं पड़ते। बस, बात वहीं खत्म हो गयी।

मैं सिंगापुर की बात करता-करता दूसरी तरफ चल पड़ा था। सिंगापुर जब तीसरी बार गया तो बड़ी कुश्तिायों का पहलवान बन चुका था। पुराने यार-दोस्त मेरी कामयाबी से बहुत खुश थे। गुरुद्वारों की सराय मे रहने वाला पहलवान अब बढ़िया होटल में ठहरा हुआ था। आदमी कितना ही बड़ा हो जाए, पर जब वह पुराने माहौल वालों में जाता है, तो उसे उसी तरह का बनकर जाना चाहिए। होटल में रहने का यह मतलब नहीं कि अपने अखाड़े वालों को भूल जाता। सिंगापुर पहुँचने के तीन-चार दिन बाद मैं पथरू पहलवान के अखाड़े में जा पहुँचा। पथरू पहलवान बहुत खुश हुआ। कहने लगा हमने तो सोचा था कि दारा सिंह अब बड़ा आदमी बन गया है, हमें भूल गया होगा। मैंने कहा पहलवान जी, आना तो मुझे पहले ही दिन चाहिए था, लेकिन सफर की थकावट थी इसलिए सोचा कि जरा ताजा दम होकर आपसे मिलूँ। और फिर सुना है छतरधारी आजकल पूरा तैयार है। इसके साथ पकड़

भी मारनी पड़ेगी।

पहलवान बहुत खुश हुआ, बोला अच्छा! अभ्यास करोगे? मैंने कहा हां इसीलिए ताजादम होकर आया हूँ।

जब मैं अखाड़े पहुँचा था तो छोटे पहलवान अभ्यास कर रहे थे और छतरधारी तैयारी कर रहा था। अखाड़े में रहने वाले और आसपास के लोग आ जमा हुए। सभी को यह भरोसा था कि छतरधारी तगड़ा निकलेगा। दारा सिंह तो सफर करता रहता है, भला, कभी एक जगह बैठे बिना पहलवान हो सकती है? साढ़े तीन वर्ष बाद मेरा और छतरधारी का अभ्यास हुआ था। छतरधारी 1951 से अभ्यास करने लगा था, पर था छोटी उम्र का। अब 22-23 साल का जवान था और पूरे मलेशिया में इस जैसा दूसरा पहलवान नहीं था।

हमारा अभ्यास शुरू हुआ, क्योंकि मैं इसे पहले भी अभ्यास करवाता रहा हूँ, इसलिए मैं पहले ही हिसाब से शुरू हुआ, पर पहली ही पकड़ में मुझे छतरधारी चुभा, मैंने चौकन्ना होकर अभ्यास करवाना शुरू किया। छतरधारी ने एक दो हमले किये, पर मैंने उसे पीछे धकेल दिया और फिर वह ढीला हो गया। अभ्यास अच्छा हुआ, पर उसने बस कर दी। पथरू पलवान ने कहा—जैसे छतरधारी इन वर्षों में बढ़ा है, वैसे ही दारा दास भी बढ़ता रहा है। अगर 1951 वाला दारा दास होता तो अवश्य छतरधारी इसको पकड़कर अभ्यास करा देता । मैंने कहा—पहलवाना जी, मैं सफर तो जरूर करता हूँ, मगर जिस शहर में जाता हूँ अखाड़े का पता पहले लगा लेता हूँ।

पहलवान ने शाबाशी दी और कहा—अगर पहलवानी करनी है तो ऐसे की करना चाहिए।

पथरू पहलवान छतरधारी को बड़ा पहलवान बनाने की बहुत कोशिश करता रहा, पर बड़ा दंगली पहलवान न बना सका। यहां कौशिश की, 1956 में भारत भी भेजा। सुखदेव पहलवान के साथ आकर हमें किस्मत को मानने पड़ता है। जिनको बनाना है वे किसी भी हालत में बन जाते हैं। किसी ने ठीक कहा है कि अल्लाह मेहरबान तो गधा पहलवान!

अमृतसार में कमरा न मिला

1956 की सर्दियों में मैं, अजीत तथा सरदारा ने अमृतसर शहर में रहकर अभ्यास करने का ब्यौत किया। हम तीनों ने शहर में रहने के लिए जगह तलाशनी शुरू कर दी। बहुत से घरों में पूछ-पड़ताल करने के बाद पता लगा कि लोगों के पास कई घरों में, कमरे तो खाली हैं, पर वह छड़ों (अविवाहितों) को देना नहीं चाहते। सो, जब भी हम कहते कि हम तीनों कमरे में रहेंगे, तो घरवाले कहते—हमें तो किरायेदारा बाल-बच्चों वाला चाहिए। बड़ी मुश्किल आ पड़ी। एक दिन अचानक हम किला गोविन्दगढ़ दंगल देखने गये तो एक दुबला-पतला आदमी मेरे पास आया और कहने लगा पहलवान जी, सुना है आपको शहर में रहने के लिए कोई योग्य जगह नहीं मिल रही है। मैंने कहा—जगह तो बहुत है पर लोग शादीशुदा को ही घर में रखना पसन्द करते हैं। इसपर वह कहने लगा अगर आपको जगह पसन्द आ जाए तो मेरे पास एक जगह है। मैं एक मिल में काम करता हूँ और मालिकों ने हम बाल-बच्चे वालों को रहने के लिए क्वार्टर दिये हुए हैं। मेरा नाम श्रवणदास है और मैं जालन्धर जिले का रहने वाला हूँ। मेरे बच्चे गाँव में ही रहते हैं। मुझे भी कुश्ती का शौक है।

मैंने कहा—श्रवण, तेरा क्वार्टर पहले देख लें फिर अगली बात करेंगे। उसने कहा—दंगल खत्म होने के बाद चलकर देख लो।

श्रवण का क्वार्टर देखा एक बड़ा खुला कमरा, एक रसोईघर, आगे छोटा-सा बराण्डा और दो एक चारपाईयाँ बिछाने लायक एक बगीची। क्योंकि सर्दी में पंजाब में धूप सेकनी बहुत जरूरी होती है, हमें जगह पसन्द आ गयी। अखाड़े से थोड़ी ही दूर थी, पर साईकिलों से रोज दस-बाहर मील जाने वालों को यह दो-ढाई मील क्या कहती है। मैंने कहा—भई, किराया कितना लोगे? उसने कहा—मैं आपसे किराया लेता अच्छा लगूँगा?

मैंने कहा हम मुफ्त रहते अच्छे लगेंगे? साथ ही तुम्हें रहने की दिक्कत होगी।

उसने कहा—मैं तो अपने एक दोस्त के पास रह लूँगा, जो इन्हीं क्वार्टरों में रहता है। आप लोगों को 6 महीने रहना है, आराम से रहो।

मैंने कहा—हमें मुफ्त नहीं रहना। इसपर उसने कहा इस बहाने मैं भी अभ्यास कर लिया करूँगा। आप मुझे अपना शागिर्द समझें और गुरु दक्षिणा में यह क्वार्टर अपना ही समझो। वाह भई, श्रवण की इस बात ने हमें मोह लिया और हम दूसरे सप्ताह में अपना सामान आदि ले आए और क्वार्टर को संवारकर हम वहाँ रहने लगे।

सर्दियों में अखाड़े के अभ्यास शाम को होते हैं और दण्ड बैठकों के व्यायाम सुबह। हम गाँव से साइकिलें ले आये थे और पंडित लच्छाराम के अखाड़े में अभ्यास करना शुरू कर दिया। लच्छाराम जी को पहलवानी का बड़ा शौक था। इन्होंने वस्सन सिंह शेरोंवालिए को भी पहलवानी करवाई थी, जब वस्सन ने श्यामी अमतृसरिए को चित किया था। यह अखाड़ा हाल गेट से आगे एक बाग में बहुत ही साफ-सुथरी जगह बना हुआ था। हम तीनों के अलावा शहर के कई लड़के भी अभ्यास के लिए आते थे। अभी हमें इस अखाड़े में पन्द्रह-बीस दिन ही हुए थे कि एक पहलवान अम्बा लाल अभ्यास करने आ गया। यह शहर के किसी दूसरे अखाड़े का पहलवान था। मैंने इसको भी अभ्यास करवाया, जैसे अजीत व सरदारा को करवाता था।

दूसरे दिन पंडित लच्छाराम जी कहने लगे—जो भी शहर का लड़का आए उसे सख्ती से अभ्यास करवाया करो, क्योंकि ये लोग बाहर जाकर बातें बनाते हैं। मैंने कहा—पंडित जी, जिस पहलवान को अभ्यास करवाते हुए कई बार चित कर लिया, वे क्या बात बनाएगा। इसपर कहने लगे वह कहेगा कि मैंने फलाने के साथ इतने मिनट अभ्यास किया। खैर, उनकी दलील मुझे जँची तो नहीं, पर वह खलीफा थे और मैं पहलवान, न भी नहीं कर सकता था। मैंने कहा आगे से जैसा आप कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगा। सो, अम्बा लाल बेचारा एक-दो सप्ताह अखाड़े आकर स्वयं ही हट गया और कोई अन्य नामवर अभ्यास करने नहीं आया।

मैं तो हिन्दुस्तान से बाहर जाने की सोच रहा था, साथ ही अजीत और सरदारा तगड़े हो जाएँ यह हमारा मकसद था। शहर में हम पूरी सर्दियाँ ठहरकर अभ्यास करना चाहते थे, सो मौका हमें मिल गया।

इन दिनों में दंगल तो कोई नहीं था, पर एक दिन कुश्तियों का ठेकेदार और फेडरेशन का भूतपूर्व सेक्रेट्री आर.एस. थापर, जो मेरा दोस्त भी बन गया था, हमारे पास आया और कहने लगा—चलो, कोई फिल्म देखने चलते हैं।

मैंने कहा—हमारे पास फिल्म देखने के लिए समय ही नहीं है। वह मेरी बात

सुनकर हँसने लगा और बोला यह कैसा मजाक है! आप खाली ही तो रहते हो। इसपर मैंने कहा–तुम दोपहर के समय आये हो, हमारी नींद थोड़ी खराब हुई है क्योंकि हमें तो अखाड़े जाने से पहले जी भरके सोना होता है।

उसने कहा–अखाड़े में अभ्यास करने के बाद, नहा धोकर फिल्म चलेंगे। टिकट मैं पहले ले आऊँगा। मैंने कहा अखाड़े में अभ्यास करने के बाद हम ठण्डाई बनाकर पीते हैं, फिर नहाकर वापस आकर सूप बनाना है। यह सब करते हुए शाम के आठ बच जाएँगे। यह सुन उसने कहा फिर तो शाम को साढ़े नौ बजे वाला शो ठीक रहेगा। मैंने कहा–नौ बजे हमारा भोजन होता है। उसके बाद 10 बजे से सुबह 4 बजे तक सोना होता है, फिर सुबह 4 से 8 बजे तक व्यायाम और मालिश आदि करते हैं, ठण्डाई बनाते हैं और नहाने-धोने में 9 बज जाते हैं। इसके बाद बाजार जाकर हम दोपहर और रात को खाने के लिए सामान लाते हैं। दोपहर का खाना बनाते-खाते हमें बारह-एक बज जाताहै, फिर हम सुबह की थकावट उतारने के लिए 1 से 3 बजे तक सोते हैं। शाम को चार बजे, हाथ-मुँह धोकर अखाड़े पहुँच जाते हैं।

यह सारी दिनचर्या सुनकर यह सोचने लगा। फिर कहने लगा चलो कोई बात नहीं। हफ्ते में एक दिन तुम लोग छुट्टी मनाते हो, अभ्यास नहीं करते, उस दिन फिल्म देखने चलेंगे।,

मैंने कहा–हाँ, यह हो सकता है। अगर फिल्म देखनी इतनी ही जरूरी है तो अपने चले चलेंगे, लेकिन छुट्टी का दिन पूरा आराम करने के लिए रखा गया है। छुट्टी वाले दिन महीने में हम एकाध फिल्म देख लिया करते थे। वैसे सिंगापुर में भी सात-आठ बार फिल्म देखने गए होंगे। सिंगापुर में उन दिनों सप्ताह में एक हिन्दी फिल्म लगती थी। सिनेमा का मालिक वली मुहम्मद केरल का रहने वाला था और उससे मेरी अच्छी जान पहचान थी। अगर टिकट हमें मुफ्त मिलें तो कभी-कभार गुरु जी हमें फिल्म देखने की आज्ञा दे देते थे, वरना कहते थ फिल्में देखना पहलवानों का काम नहीं। वैसे उनका दिल करता तो खुशी में पास मँगवाकर मुझे भेज दिया करते थे। सिंगापुर में गुरुजी ने अपने लड़के को पढ़ने बिठाया था, पर अजीत कक्षा में जाने के बजाय फिल्म देखने चला जाता था। एक दिन किसी ने आकर हमें खबर दी कि अजीत तो थियेटर में बैठा है। घर से वह पढ़ने गया था। गुरुजी साईकिल लेकर गये और अपनी तसल्ली करके वापस आ गये।

अजीत जब वापस आया तो उन्होंने पूछा तुम आज क्लास में नहीं गये, क्या बात थी? उसने कोई बहाना बनाया। गुरुजी ने दूसरा सवाल किया–क्या तुम थियेटर में फिल्म देख रहे थे? उसने कहा–नहीं। यह सुनकर गुरुजी को गुस्सा

आ गया—ओए कन्जर, मैं खुद तुझे सिनेमा में बैठा देखकर आया हूँ। और अजीत को हल्का-सा धौल जमाया। अजीत अकड़ गया, कहने लगा—आज तुझे देख लेता हूँ बड़े भलमानस को! बस, फिर क्या था, गुरुजी तो गुस्सा होकर अजीत को मारने दौड़े। मैंने और ग्रन्थी बाबे ने पहलवान को बड़ी मुश्किल से हटाया। वरना उन्होंने तो अजीत को गिरा लिया था और दो-तीन हाथ जड़ भी दिये थे। अजीत दौड़ा था, पर उन्होंने ने गुसलखाने के पास उसे पकड़ लिया। ग्रन्थी बाबा ने समझाया, भई लड़का नादान है, इसे कहीं चोट-वोट लग गयी तो अस्पतालों में घूमते फिरोगे।

बड़ी मुश्किल से गुरुजी का गुस्सा शान्त हुआ। इस तरह अजीत को चोरी से फिल्म देखने की सजा मिली। वैसे, मेरा खयाल था अगर अजीत सच बोल देता तो बात यहाँ तक नहीं बढ़ती।

1956 की सर्दियाँ अमृतसर में रुककर हमने खूब अभ्यास किया। एक दिन पाकिस्तान से रशीद अनवर, जो भारत में फ्री-स्टाइल कुश्तियों का रेफरी रह चुका था, आया। उन दिनों गामा पहलवान बहुत बीमार थे। रशीद के साथ मैं यूरोप जाने का प्रोगाम बनाना चाहता था, क्योंकि यह लन्दन में पहले फ्री-स्टाइल कुश्तियाँ लड़ चुका था।

हमने 1957 की गर्मियों में बाहर जाने का कार्यक्रम बनाया और साथ ही रशीद से मैंने गामा पहलवान को देखने की इच्छा जाहिर की। मैंने गामा पहलवान का चित्र एक बार कोलम्बो में देखा था। अब वह बहुत बीमार थे, सोचा क्यों न एक बार मिल लिया जाए। रशीद ने कहा—'ठीक है, तुम मेरे साथ चलो। एक-दो हफ्ता पाकिस्तान की सैर भी कर आना।' मैंने कहा—नहीं, सिर्फ एक दिन के लिए चलेंगे। साथ ही पंजाब में कहावत भी है जिसने लाहौर नहीं देखा, वह जन्मा ही नहीं। महीना तो अब मुझे याद नहीं, पर मौसम ठण्ड का ही था। मैं और रशीद बस में बैठकर लाहौर पहुँचे। उसी दिन ही हम गामा पहलवान के निवास पर गये। पहलवान बीमार, चारपाई पर लेटे हुए थे। परिचय कराते हुए रशीद ने कहा पहलवान जी, यह दारा सिंह पहलवान है। इस समय का रुस्तमे हिन्द!

गामा जी धीरे-धीरे बोले सुन्दर जवान है। और फिर वह अपने हिन्दुस्तान की यादों की बातें करते हुए आँखों में आँसू ले आये। कहने लगे हम जहाँ भी जाते थे, लोग हाथों से छाँह करते थे।

मैंने कहा आप अब भी आइए, लोग आपका दिल से स्वागत करेंगे।

कहने लगे—अब इस बीमारी से छुटकारा मिले तभी कुछ सोच सकते हैं। पता नहीं अल्ला की क्या मर्जी है। वैसे इस बीमारी की गोलियां दे-देकर मैंने कई

लोगों को ठीक किया है, पर ये गोलियां मेरे अपने शरीर को इस रोग से निजात नहीं दिला सकी।

हम थोड़ी देर उनसे बातें करते रहे और फिर उठ आये क्योंकि ज्यादा बोलने से उन्हें तकलीफ हो सकती थी। उनसे मिलकर और उनकी जिन्दगी पढ़ने के बाद मेरा अपना अनुमान है, हो सकता है कि गलत भी हो, वह यह है कि गामा पहलवान बड़ी उम्र तक इतना अधिक व्यायाम करते रहे कि उसने शरीर का सारा तानाबाना इतना धँस दिया कि वह इलाज के काबिल ही नहीं रहा। सुना है कि 64 साल की उम्र तक यह पूरी जवानी जैसे वर्जिश करते रहे थे और 60 साल के बाद तो अच्छे से अच्छे शरीर मेडिकल के हिसाब से घटना शुरू जो जाता है। ढलती उम्र के साथ-साथ व्यायाम कम करना भी लाजिमी है।

मैंने दूसरे दिन लाहौर की सैर की। रशीद के कई दोस्तों से मिला। काले पहलवान छोटे गामा और इमाम बख्श पहलवानों को मिला और भोलू के घर खाने की दावत खायी। तीसरे दिन मैं वापस अमृतसर आ गया।

मेरा दुनिया का दौरा

अगस्त 1957 में मेरा तथा रशीद का रूस जाने का कार्यक्रम बन गया। मास्को में यूथ फेस्टिवल यानी जवानों को मेला होना था और इस मेले के मौके पर दुनियाभर के लिखाड़ियों के खेल होने थे। हम दोनों को खासतौर से, कुश्तियाँ देखने का निमन्त्रण मिला था। हमारा इरादा था कि हम मास्को से लन्दन चले जाएँगे। हम काबुल के रास्ते होते हुए ताशकन्द और फिर मास्को पहुँचे। लेकिन विश्वविद्यालय में हमारे रहने का प्रबन्ध किया गया था और हमें एक दुभाषिया भी दिया गया था।

खेलों के पहले दिन हिस्सा लेने वाले देशों के खिलाड़ियों को मास्कों स्टेडियम में मार्च-पास्ट करना था। हम स्टेडियम में पहुँचे तो भारतीय खिलाड़ियों की अगवानी के लिए मुझे कहा गया। हर देश की टीम के अगुवा के पास कौमी झण्डा था। मैं भी तिरंगा लहाराता हुआ अपने खिलाड़ियों के आगे चला। उस समय स्टेडियम दर्शकों से खचाखच भरा था। सवा लाख लोगों के बैठने की क्षमता वाले इस स्टेडियम का नजारा देखने वाला था। सोवियत यूनियन के नेताओं ने खिलाड़ियों की सलामी ली। पहले नम्बर पर चीन की टीम, दूसरे पर मिस्त्र की और तीसरे नम्बर पर हमारी भारतीय टीम थी। उसके पीछे कई देशों की टीमें थी।

चीन के झण्डे की सलामी लेते समय सीटों पर बैठे करीब सभी लोग उठ खड़े हो जाते थे, मिस्त्र की बारी में करीब आधे और हमारी बारी में मिस्त्र से भी कम उठते थे। दूसरों की बारी में तो कोई भी नहीं उठता था। इसका कारण कोई भी हो, पर यब बात दूसरे देशों के खिालाड़ियों को चुभी तो जरूर होगीं

एक बात और वर्णन योग्य है। हमारा तिरंगा, जब लोगों के सामने से गुजरता तो आवाजें आती थी–जवाहरलाल नेहरू, राजकपूर! जितनी बार जवाहरलाल उतनी बार राजकपूर!

दूसरे दिन हमें पता लगा कि यह मेला देखने के लिए राजकपूर भी आया हुआ है। उसकी फिल्में रूस में बहुत पसन्द की जाती हैं। मैं राज साहब को बम्बई से ही जानता था। एक बार कुश्तियों की जब बम्बई में बड़ी धूम मची तो राज जी की एक फिल्म प्रीमियर पर मुझे बुलाया गया। मध्यान्तर में पत्रकारों ने जोर दिया कि जिस तरह तुम पहलवानों को हाथों में उठाकर रिंग से बाहर फेंक देते हो, उसी तरह राजकूपर को उठाओ, हमें चित्र लेने हैं, तो मैंने राज जी को उठाया था। देखने में जब दुबले-पतले लगते थे, पर भारीभरकम निकले। ठोस शरीर था।

उसके बाद हमारे एक पहलवान को अभिनेत्री श्यामा को देखने की बड़ी उत्सुकता थी। मैंने राज जी को फोन किया और हम उनके आर.के. स्टूडियो पहुँच गये। पहलवानों की उन्होंने बड़ी खातिर की, पर हमारे पहलवान की उमंग बीच में ही रह गयी। श्यामा उसे उस दिन भी न मिल सकी और हम निशी व गोप की शूटिंग देख कर वापस आ गये। रास्ते में मैंने पहलवान को बताया वह अभिनेत्री जो तुम्हें आम काट-काटकर खिला रही थी, उसका नाम नर्गिस है। अव्वल दर्जे की है, इसके जोड़ की तो कोई और अभिनेत्री है ही नहीं। पहलवान कहने लगा नहीं यार, श्यामा को तो नाचने नहीं देते, नहीं तो वह धूम मचा दे। दरअसल पहलवान ने जो फिल्म देखी होगी उसमें श्यामा को खलनायिका या माँ-बाप की तरफ से नाचने में कोई रुकावट डाली गयी होगी। कुछ भी हो, हमारा पहलवान तो श्यामा का प्रशंसक था। हम स्टूडियो से निकले तो होटल तक वह श्यामा की ही बातें करता रहा।

मास्को में पूछते-पाछते मैं और रशीद, राज जी को मिलने एक होटल मे पहुँचे। रात को कोई पार्टी होगी, शराब और सोड़े की बोतलें और खाने-पीने का सामान मेजों पर बिखरा पड़ा था। दिन के ग्यारह-साढ़े ग्यारह हुए होंगे, हमने राज जी को कच्ची नींद से जगाया। कुछ देर मेले की बातें होती रही। फिर रशीद ने कोई 'नीचा नगर' फिल्म बनाई थी, उसकी और फिर राज जी की 'जागते रहो' की ईनाम जीतने की बातें हुई। उन्हीं दिनों फिल्म 'परेदशी' की मास्को में शूटिंग हो रही थी। हम तो खाली आदमी थे और हमारा दुभाषिया हमारा मनोरंजन कराने की पूरी कोशिश कर रहा था। स्टूडियो पहुँचे तो ख्वाजा अहमद अब्बास और बलराज साहनी से मिले बलराज जी भी रशीद के पुराने मित्र थे। हमने कई देशों के लोगों के साथ फोटे खिंचवाए। मेले में तीन-चार दिन हम आम लोगों की तरह घूमते रहे। एक दिल अचानक पता नहीं क्यों, मेरा राष्ट्रीय पोशाक पहनने को जी कर आया। मैंने चूड़ीदार पाजामा, अचकन और पैरों में जूतियाँ पहन ली और सिर पर

फरले जैसी पगड़ी बाँध ली। जब रोज की तरह मेले में गये तो लोग तो मुझसे हाथ मिलाने से ही न हटें और पूछें कि भई किस देश के वासी हो, सभी मेरे साथ फोटो खिंचवाने के लिए बेचैन! बात यह हुई—मेरी पोशाक ने मुझे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति बना दिया और रशीदे ने मुझसे विनती की कि भई, जितने दिन यहाँ रहना है, यही पोशाक पहना कर। हमारा दुभाषिया भी उस दिन से कुछ ज्यादा ही खुश हो गया क्योंकि पूछताछ और फिर दोस्ती के लिए न्यौता आम हो गया था।

मैंने सोचा क्यों ना रूस में व्यावसायिक कुश्तियाँ लड़ी जाए? पता किया तो मालूम हुआ कि व्यावसायिक कुश्तियाँ मास्को सर्कसवाले करवाते हैं। हम जाकर जनरल मैनेजर को मिले। उससे पैसों की बातचीत तय हो गयी। उसने कहा आप छह महीने यहां रहो और हमारे साथ हमारे देश का दौरा करो, इसलिए बात टूट गयी कि जो पैसे मैं कमाऊँगा, वे रूव से बाहर नहीं जा सकते। बाहर पैसे भेजने का बजट साल में एक बार बनता है और चालू साल का पहले ही बन चुका है। इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता। हां, अगले साल आपको आना हो तो आपके पैसे बाहर ले जाने की मन्जूर ली जा सकती है। मैंने कहा फिर मैं अगले साल ही आऊँगा।

मेले के बाद रेलगाड़ी के रास्ते हम कीव से होते हुए परारा शहर पहुँचे और वहाँ एक दिन रहकर हवाई जहाज में बैठे लन्दन पहुँचे। लन्दन में उस समय कुश्तियों का वर्ल्ड चैंपियनशिप टूर्नामेंट चल रहा था। लन्दन के कई पहलवान भारत में मुझसे लड़ चुके थे, सो मेरा नाम वहां पहले ही पहुँचा हुआ था। ब्रिटेन का चैंपियन उस समय बर्ट असिर्टी था, जिसको मैंने भारत में चित किया था। यूरोप के कई पहलवान इस टूर्नामेंट में मेरे साथ लड़े। मैंने तीन महीने में वर्ल्ड चैंपियन के साथ लड़ने लायक नम्बर प्राप्त कर लिये।

11 दिसम्बर 1957 को रायल अलबर्ट हाल लन्दन में वर्ल्ड चैंपियनशिप की मेरी कुश्ती वर्ल्ड चैंपियन लू थेज के साथ हुई। यह अमरीका का पहलवान था। इसके साथ मेरी कुश्ती बराबर रही। इस कुश्ती को बी.बी.सी. लन्दन द्वारा सारी दुनिया में ंप्रसारित किया गया। 1958 की गर्मियों तक मैंने लन्दन में रहकर यूरोप में कुश्तियाँ लड़ी। इनमें 4-5 बराबर रही, और बाकी सभी मैंन जीत ली। जो कुश्तियाँ बराबर रही उनमें से लू थेज वाली कुश्ती को छोड़कर, दूसरी बार लड़कर मैंने सारी कुश्तियाँ जीत ली। यूरोप की कुश्तियों-को जीतने की इतनी चर्चा हुई कि वहाँ लन्दनवासी भारतीयों की संस्था के सदस्य मेरे पास आये और बोले —हम आपको आपकी जीत की बधाई देने आये हैं और साथ ही एक जरूरी बात करनी है।

मैंने कहा—जी, हुक्म करो, क्या कहना चाहते हो?

कहने लगे—इससे पहले भी भारत से कई पहलवान आये और आपकी तरह कुश्तियाँ जीतते रहे, पर लौटते समय बड़ी कुश्ती हार गये। इस तरह हमारा बहुत अपमान होता है। हम चाहते हैं कि आपको जितने पैसे चाहिए, हम भाइयों से एकत्र करके दे देते हैं, पर आप दूसरों की तरह हारकर न जाना।

मैंने कहा जी मैं पैसे लेकर नहीं, हारूँगा तब कोई तगड़ा मुझे चित कर लेगा, उसमें मैं कुछ नहीं कर सकूँगा।

वह लोग बड़े खुश हुए। अपने लोगों के आशीर्वादों का फल कि वाहेगुरु ने बाहर के देशों में मुझे कभी भी हार का मुँह नहीं देखना पड़ा, यही मेरी प्रसिद्धि का मूल कारण रहा।

अलबर्ट हाल की कुश्ती देखने लोग इंग्लैण्ड के कोने-कोने से आये थे, पर टिकट एडवांस में ही समाप्त हो चुके थे। बहुत सारे भारतीय दूर शहरों से ओये पर जगह न होने के कारण कुश्ती नहीं देख सके थे। इन कुश्तियों की चर्चा के कारण मुझे अमरीका और कैनेडा से न्यौता आया।

जुलाई 1958 में मैं कैनेडा गया। टोरंटो शहर ठिकाना रखकर अमरीका और कैनेडा में कुश्तियाँ लड़ी। कैनेडा के चैंपियन और भूतपूर्व वर्ल्ड चैंपियन बिली। विपर वारसन के साथ कुश्ती बराबर रही और शेष सभी कुश्तियां मैं जीत गया। डेढ़ साल भारत से बारह रहकर मेरा मन देश वापस लौटने के लिए उतावला हो रहा था। अमरीकन ठेकेदार चाहते थे कि मैं हमेशा के लिए वही रह जाऊँ। वे मुझे वहाँ की नागरिकता दिलवाने के लिए भी तैयार थे पर मैंने कहा—कुश्तियाँ लड़ने के लिए फिर आऊँगा, पर हमेशा रहने के लिए मेरा मन नहीं मान रहा। मैं वहां से वापस आकर एक महीना लन्दन रहा, 1959 के आरम्भ में वापस भारत पहुँच गया था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू से भेंट और कॉमन वेल्थ चैंपियनशिप

भारत के प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को एक बार 1956 में अमृतसर काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में पास से देखा था, पर उनसे भेंट नहीं हुई थी। मुलाकात में मैंने कोई मसला हल करने की सलाह नहीं देनी थी, केवल नमस्ते करने को मन कर रहा था। उनका व्यक्तित्व ही ऐसा था कि हर मन के प्यारे बने हुए थे। जब मैं वर्ल्ड चैंपियनशिप की कुश्तियों में हिस्सा लेकर, एक बार भी हारे बिना, भारत वापस आया तो मैंने सोचा कि पंडित जी से मिलने का यह अच्छा बहाना है, क्योंकि बिना किसी काम के प्रधानमन्त्री को मिलकर उनका समय खराब करने का किसी को कोई हक नहीं। मेरे उनसे मिलने के तीन मकसद थे। एक तो केवल नमस्ते करके बातचीत करने का, ताकि कह सकूँ कि मैं प्रधानमन्त्री को निजी तौर से जानता हूँ। दूसरा, 1959 में कॉमन-वेल्थ चैंपियनशिप के दंगल चल रहे थे। ये मुकाबले दिल्ली और कलकत्ता में चल रहे थे। इन कुश्तियों में पंडित जी एक बार आ जाएँ, यह विनती करनी थी। और तीसरा था दिल्ली में कुश्तियों के प्रोमोटर मि. गोगी, जिनके जीवन की बड़ी ख्वाहिश थी पंडित जी से भेंट करने की, सो इन मसलों को हल करने के लिए मैंने पंडित जी को पत्र लिखा।

एक सप्ताह बाद उनके सचिव का होटल जनपथ में मुझे फोन आया और पूछा कि किस काम के लिए मिलना चाहते हैं? मैंने कहा—जी मैं, कुश्तियाँ लड़ता हुआ दुनिया का दौरा करके आया हूँ और कुश्तियों में मेरा नाम दुनिया के एक नम्बर के पहलवानों में है। बस, पंडित जी के दर्शन करने की इच्छा है।

उसने कहा—ठीक है। और हमें दो-तीन दिन बाद मुलाकात करने का समय दे दिया। मैं, मेरा भाई रन्धावा और गोगी हम तीनों मुलाकात वाले दिन प्रधान मन्त्री

निवास पहुँच गये। हमारे अलावा मिलने वाले वहां कई और भी थे। मैंने सचिव से कहा–यहां तो बहुत भीड़ है, मुलाकात कैसे होगी? इसपर उसने कहा आपने सिर्फ दर्शन करने के लिए कहा था, इसलिए आपको इस तरह का समय दिया गया है। क्योंकि सप्ताह में एक दिन पंडित जी अपने दर्शनाभिलाषियों को मिलते हैं, फिर भी मैं उन्हें कह दूँगा। आपको कोई बात करनी हो तो खड़े-खड़े कर लेना। वह आपको कुछ अधिक समय दे देंगे।

लोग अपनी-अपनी जगह खड़े थे। हम भी लोगों से थोड़ा हटकर एक जगह खड़े हो गये। सबको मिलते हुए जब पंडित जी हमारे पास आये तो सचिव ने कहा–जी यह हैं पहलवान दारा सिंह, यह इनके छोटे भाई और यह प्रोमोटर गोगी।

पंडित जी ने हमसे हाथ मिलाया और मुझसे पूछा कौन-कौन से देशों का दौरा करके आये हो। मैंने कहा–जी, रूस, ब्रिटेन, यूरोप, कैनेडा और अमरीका।

उन्होंने दूसरा सवाल किया हमारे और विदेशी पहलवानों में क्या अन्तर है?

मैंन कहा–, जी वहां की एसोसिएशन बहुत मजबूत है, वही पहलवानों की देखभाल करती है। हमारे यहां पहलवानों को अपनी देखरेख स्वयं करनी पड़ती है। इसपर पंडित जी ने कहा–तो फिर आप भी भारत में एसोसिएशन बनाओ। मैंने सोचा, इतना बड़ा काम मैं अकेला कैसे कर सकता हूँ? पर फिर भी मैंने कहा जी, मैं कोशिश करूंगा और साथ ही मैंने अपना मकसद बताया। मैंने कहा–जी, दिल्ली में दंगल चल रहे हैं, आप एक दिन पधारें तो बहुत मेहरबानी होगी।

बोले–अरे, मैं दंगल देखने कैसे आ सकता हूँ, मेरी छाती पर तो आस्ट्रेलिया का प्रधानमन्त्री बैठा है। उसने मुझे चित किया हुआ है, इसलिए मेरे पास समय नहीं है।

मैंने कहा कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप हो रही हैं अगर आप आएंगे तो पहलवानों के हौसले बुलन्द होंग। अगर अधिक नहीं तो सिर्फ दस मिनट के लिए ही आ जाइए।

इसपर बोले मेरे आने से पहलवानों को उत्साह मिलेगा?

मैंने कहा–जी, हमारे तो हौसले इतने बढ़ जाएँगे कि मैं बयान नहीं कर सकता।

पंडित जी ने दूसरे सचिव से सलाह-मशविरा किया और खड़े-खड़े ही दस मिनट के लिए कुश्तियाँ देखने आने के लिए हां कर दी। सचिव को इन्तजाम के लिए कहा और विदा के लिए हाथ मिलाए। पंडित जी ने सचिव को कहा कि इनको बिना खिलाये-पिलाये नहीं भेजना। यह कहकर वह चले गये। इसके बाद इन्दिरा

जी कुछ लोगों से मिल रही थी। उनसे भी सचिव ने मुलाकात करवायी। उस समय इन्दिरा जी काँग्रेस की अध्यक्ष थी। मैंने उनसे विनती की कि वह दंगल देखने आये। उन्होंने समय की कमी का इजहार किया तो मैंने कहा दंगल तो रविवार को होगा, और रविवार छुट्टी का दिन होता है। कहने लगी—हमारे लिए सभी दिन एक जैसे हैं, छुट्टी का दिन कोई भी नहीं।

फिर सचिव हमें दूसरे कमरे में ले गया, जहां राजीव, संजय और अमिताभ बच्चन भी हमसे मिलने आये। हमने चाय आदि पी। ये तीनों उस समय छोटे थे। चाय पीने के पश्चात फोटों खींचे गये। अमिताभ थोड़ा दूर जाकर खड़ा हो गया और जब तक राजीव ने उसे फोटो के लिए बुलाया नहीं, वह आगे नहीं आया। इन्दिरा जी के साथ भी फोटो लिये गये।

कुश्ती वाले दिन पंडित नेहरू जी के साथ संजय और राजीव गांधी भी कुश्ती देखने आये। उस दिन बड़ी कुश्तियों का टेस्ट मैच था। मैं और मेरा भाई रन्धावा एक तरफ तथा किंगकांग और आस्ट्रेलिया का जीन मर्फी दूसरी तरफ। पंडित जी के आने पर हमारी कुश्ती शुरू हुई। आये तो वह सिर्फ दस मिनट के लिए थे, पर बैठे रहे 50 मिनट तक। 50 मिनट बाद मैंने और रन्धावा ने कुश्ती जीत ली। कुश्ती के बाद पंडित जी विशेष रूप से हमें मिलकर गये। उस वक्त उनका चेहरा कह रहा था—कि वह बहुत खुश थे। बाद में हमें प्रोमोटर ने बताया कि जब कुश्ती चल रही थी, तो उनका सचिव बार-बार उन्हें चलने की याद दिलाता रहा, पर वह कह देते थे—बस, थोड़ी देर और! और इसी तरह कुश्ती खत्म हो गयी। हम जब कुश्ती के बाद पंडित जी को कार तक छोड़ने गये तो नारों से स्टेडियम गूँज रहा था। मुझे मास्को के स्टेडियम की याद आयी। जिस तरह मास्को में नारा लगता था—पंडित जी व राजकपूर का, इस समय दिल्ली में लग रहा था—पंडित जवाहर लाल की जय! दारा सिंह की जय!

इसके बाद राजीव और संजय मेरे दंगल देखने कई बार आये और मुझसे एक खास मेल-मिलाप हो गया।

कॉमनवेल्थ दंगलों में हिस्सा ले रहे थे - कैनेडा के जार्ज गॉरडियान्कोक, जो ओलिंपिक चैंपियन भी रह चुके थे, यूरोप का चैंपियन और इंग्लैण्ड का वसनीक बिल रॉबिन्सन, आस्ट्रेलिया का बिल वरना और जीन मर्फी, अफ्रीका का प्रिंस कमाली, भारत की ओर से मैं, टाइगर जोगेन्दर, वस्सन सिंह, पाकिस्तान का सईद सैफ शाह तथा और भी कई पहलवान थे। आखिर में फाइनल में मेरी और जार्ज गॉरडियान्को की कुश्ती कलकत्ता में हुई, जिसे मैंने जीत लिया और कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप

की शील्ड उस समय के वित्त और सांस्कृतिक मामलों के मंत्री श्री पी.सी. सेन द्वारा मुझे दी गयी।

इस दंगल के बाद मेरे पास आसाम ट्रिब्यून के मालिक श्री बरुआ आये और कहने लगे–गुवाहाटी में खेलों के लिए एक स्टेडियम बनाना है, अगर आप हमारी मदद करें तो हम यह काम आसानी से कर सकते हैं।

मैंने कहा–ऐसे नेक काम के लिए हम हाजिर हैं, कहिए। लेकिन मन में विश्वास नहीं था कि यह आदमी जो कह रहा है, सच है। क्योंकि हमसे कह-कहाके, पेसे कम देकर लोग संस्थाओं के नाम पर कुश्तियाँ करवा लेते थे। मुनाफे की रकम खुद डकार जाते हैं और संस्था बिचारी जहां और जिस हाल में होती है, वहीं रह जाती है।

बरुआ जी ने कहा पैसे कम लेकर कुश्तियां कर दो। मैंने कहा वह तो हम कर देंगे, पर कुश्तियों की कमाई से इतना बड़ा स्टेडियम नहीं बनेगा। तो उन्होंने कहा–एक बार तो आप तम्बुओं के नीचे कुश्ती लड़ोगे, पर दूसरी बार स्टेडियम के अन्दर यह हमारा वायदा रहा।

बातचीत हो गयी। मैंने कहा कम से कम ही सही, जहां पहले कई बार सहायतार्थ कुश्तियाँ कर चुके हैं, वहां एक बार और सही!

हम आसाम के गुवाहाटी शहर में कुश्तियाँ लड़ने गये तो बरुआ जी का प्रबन्ध देखकर दंग रह गये। बरुआ जी का परिवार भी बिना टिकट लिये अन्दर नहीं जा सकता था। अब आप स्वयं अनुमान लगाएँ कि जो कमेटी का प्रधान स्वयं भी पास न ले, तो बाकी सदस्य तो स्वयं ही टिकट लेंगे। बरुआ साहब कहते थे–मेरे दंगल में केवल एक पास बनेगा? और वह है सिर्फ कमिश्नर का बाकी सब टिकट खरीदेंगे। पहले दंगल में ही इन्होंने खूब पैसा कमाया।

फिर 1960 में कहने लगे हमारा निशाना थोड़ा-सा चूक गया है। एक बार हमें और तम्बुओं में दंगल करने दें। मैं फिर मान गया क्योंकि बरुआ साहब का पता लग ही गया था कि वह कितने सच्चे इन्सान हैं और अपनी लगन के कितने पक्के!

दूसरे दंगल के बाद कहने लगे अब आप अगली बार जब आओगे, स्टेडियम की दीवारें बन चुकी होगी और वाकई 1962 में जब फिर से दंगल हुए तो स्टेडियम का काम शुरू हो चुका था। मैं जब भी गुवाहाटी जाता, बरुआ जी के घर ठहरता था। गुवाहाटी में हरियाली इतनी है कि मच्छरों की भरमार है। हमारे साथ एक पहलवान था दलजीत राय, यह मच्छरों से इतना डरता था कि गुवाहाटी एक रात

ठहरकर, दूसरे दिन कुश्ती बीच में ही छोड़कर वापस चला गया, क्योंकि रिंग में ही मच्छर इतने थे कि झाडू लगाकर रिंग को साफ करना पड़ता था। इस पहलवान ने सारी रात मच्छरदानी में जागकर काटी और दूसरे दिन कुश्ती लड़ने के बजाय वापस बम्बई को रवाना हो गया। एक इंग्लैण्ड का वसनीक था और उसने बचपन वहीं गुजारा था, इसलिए मच्छरों से ज्यादा ही डरता था।

बरुआ जी ने 1962 के बाद, काफी अन्तराल के बाद याद किया। जब उन्होंने कहा—इस बार दंगल स्टेडियम में होगा और पहलवान ठहरेंगे भी स्टेडियम के अन्दर, तो हमारी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने बड़े शहरों के मुकाबले का एक स्टेडियम स्थापित कर दिया था।

आसाम में कुश्तियों का बहुत शौक है! लोग बहुत जोशीले हैं। गुवाहाटी के अलावा डिब्रूगढ़ तथा और कई शहरों में दंगल हुए थे। हमारे प्रशंसकों ने एक्सपोर्ट क्वालिटी की चाय के पैकेट हमें दिये, फैक्ट्रियाँ दिखाई, जहां चाय तैयार होती है और चाय के तैयार होने के पूरे काम को समझाया।

मैं कई बार खयाल करता हूँ तो मुझे अपनी कुश्ती के शौक पर बड़ा गर्व महसूस होता है क्योंकि मैंने कश्मीर से कन्याकुमारी तक और नागालैण्ड से बम्बई तक, और लगभग दुनिया के हर देश में कुश्तियाँ लड़ी हैं। लोगों से मिला हूँ और उनके माहौल को निकट से देखा है, लोगों के अलग-अलग स्वभाव तथा रहन-सहन के ढंग देखे हैं, और हर जगह मेरी कुश्ती के कौशल की प्रशंसा करने वाले लाखों लोागें को एक-सा पाया है। उस चाहत में कोई तेरी-मेरी नहीं—यही है भारतीय चाहत और दुनियावी प्रेम या भगवान का करिश्मा वर्ना पहलवान तो मेरे जैसे हजारों हुए और होते रहेंगे।

मेरा दूसरा और असली विवाह

असली मैं इसलिए लिख रहा हूँ कि यह विवाह मेरी पसन्द से हुआ। वैसे तो 1955 में जब मैं जापान वगैरा का दौरा करके आया था और खूब पैसा कमा लिया था। घरवालों ने दूसरा विवाह करने के लिए कई बार कहा, पर मैं पहले विवाह से इतना दुखी था कि विवाह करने को मन ही तैयार नहीं हो रहा था। देखी जाएगी–कहकर बात टाल देता था। आखिर एक दिन माँ ने कहा, क्या तब देखी जाएगी, जब बूढ़ा हो जाएगा?

बूढ़ा हो जाने के शब्द ने मुझे सोचने पर मजबूर कर दिया वाकई अगर विवाह करवाना ही है तो ठीक उम्र में ही होना चाहिए। मैंने मन बनाकर माँ से कहा–अगर मेरी पसन्द की लड़की मिल जाए तो मैं विवाह कर लूँगा, नहीं तो जरूरत नहीं, औलाद तो एक है ही। पसन्द की मेरी पहली शर्त यह थी कि लड़की पढ़ी-लिखी होनी चाहिए और इतनी पढ़ी भी नहीं कि गाँव में रहना भी पसन्द न करे। क्योंकि एक बार एक एम.ए. पढ़ी लड़की कुश्तियाँ देखकर मुझपर आशिक हो गयी। 1954 की बात है। एम.ए. पास थी और थी भी पक्की शहरी। सुन्दर बहुत थी, इसलिए मेरा भी बारह आने (75 प्रतिशत) मन विवाह के लिए बन गया। मैंने कहा तुम एम.ए. पढ़ी हो, पर पंजाबी नहीं जानती और मैं पंजाबी पढ़ा हूँ। पत्र-व्यावहार कैसे करेंगे? पता नहीं क्यों, पर दो महीने में उसने मुझे गुरमुखी जुबान में पत्र लिखा। यह पत्र मुझे उसका नौकर कोयंबटूर स्टेशन पर गाड़ी में बैठे हुए को दे गया था। मैंने पत्र पढ़ा, लिखा था–मैंने यह पत्र खुद लिखा है और जब से आपसे जान पहचान हुई है, मैंने यह भाषा सीख ली है।

उस समय मेरा एक दोस्त हरबंस सिंह आनन्द मेरे पास बैठा था, उसे इस बात की थोड़ी-सी भनक थी, क्योंकि वह भी कुश्तियों का शौकीन था। जहाँ भी कुश्तियाँ हों, वह जरूर पहुँचता था। उसका मोटर-पार्ट्स का व्यापार था, इसलिए

उसे सफर भी खूब करना पड़ता था। मैंने उसे सारी कहानी बतायी, तो उसने कहा मैं खानदान का पता करूँगा, पर पता करने से पहले ही बात टूट गयी।

कश्मीर में उसकी चिट्ठी मिली कि विवाह के बाद वह बम्बई में रहनापसन्द करेगी और जब मैंने उसे लिखा कि देवी, तुम्हें लस्सी का लोटा उठाकर और पगडंडी पर चलकर खेतों में खाना लेकर आना पड़ेगा तथा सर्दियों में सुबह-सवेरे उठकर दूध रिड़कना व साग घोटना पड़ेगा...तो इसके बाद उसने फिर चिट्ठी नहीं लिखी और मैंने भी सोच लिया कि इतनी पढ़ी-लिखी लड़की से ये काम करवाने भी ठीक नहीं, इसलिए अपने लिए तो मैट्रिक ही ठीक रहेगी। पढ़ी-लिखी मैं केवल चिट्ठी-पत्री के लिए ही नहीं चाहता था बल्कि वह बच्चों की देखभाल भी अच्छी तरह करेगी, वरना अनपढ़ का बच्चा तो चाहे सारा दिन कमीज से नाक ही साफ करता रहे, उसकी कोई परवाह नहीं होगी। ऊपर से कहेगी—जा, जाके बाहर खेल, यहां क्यों सुरड़ लगायी है! और वह बेचारा जब मिट्टी में बाहर से अपने साथियों के साथ खेलकर आता है तो कमीज नाक पोंछने व मिट्टी से सनकर अकड़-सी जाती है। गुण-अवगुण तो सब इन्सानों में होते हैं, पर पढ़ाई से इन्सान का दिमाग जरा रोशन हो जाता है।

खैर, लड़की ढूँढ़ने में घरवालों को 5-6 साल लग गये। एक बार तो मालवा की तरफ का एक जाट मेरे पीछे ही पड़ गया। सौदागर सिंह ने कहीं बातकर दी कि मैं शादी करने की इच्छा रखता हूँ। उसकी लड़की अनपढ़ थी। सौदागर को मैंने समझा दिया था और उसने मना भी कर दिया, पर उस भलेमानस को लगा कि सौदागर सिंह कुछ हेराफेरी कर रहा है। वह तो हमारे गाँव ही आ पहुँचा। सौदागर के गाँव कसोआने में वह मुझसे एक बार मिला था। घरवालों ने उसको खातिरदारी की। मुझे तो अमृतसर जाना था, कहने लगा—बस अड्डे तक मैं भी आपके साथ चलूँगा। रास्ते में उसने रिश्ते की बात छेड़ी। मैंने कहा अभी मेरा इरादा नहीं है। वह बोला भई, लेनदेन की कोई कमी नहीं।

मैंने कहा—जी लेने-देने की कोई बात नहीं, मैंने वैसे ही अभी मन नहीं बनाया और दिल में कह रहा था कि बस अड्डा जल्दी आयी तो पिण्ड छूटे।

अन्त में उसे यह कहकर टाला कि भई, मुझे जब भी विवाह करना होगा, आपको पहले अवश्य बताऊँगा, तो जाकर उसे कुछ तसल्ली हुई। भला मैं उसे कैसे कहता कि मैं पढ़ी-लिखी लड़की की तलाश में हूँ और मेरी कुछ शर्ते भी हैं। हाँ, एक शर्त कद की भी थी कि कम से कम 5 फुट 5 इंज हो।

कॉमनवेल्थ चैंपियनशिप के बाद पिताजी ने एक मकान अमृतसर में बना लिया। और पास के गाँव विंजरवाल में कुछ जमीन भी खरीद ली थी, कुछ जमीन

गांव में भी खरीद ली थी। कुल मिलाकर 30-35 एकड़ जमीन उन्होंने कर ली थी। हमारे गाँव से अमृतसर कोई 20-22 मील है। इरादा था कि खाने पीने का सामान गाँव से ले आएँ और शहर में रहें। यह 1959 के अन्त की बात है जब हमारे पारिवार में एक चाची ने अपनी बहन की लड़की का रिश्ता करवाने की बात चलायी। माँ ने कहा लड़की मैंने देखी है, कद भी अच्छा है और नैन-नक्श भी अच्छे हैं और मैट्रिक भी पास है। बाप उसका मास्टर है और दादा भी मास्टर था। जितने रिश्तों की बात चली थी, उन सब में यह अच्छा था। मैंने कहा—चाची, तो मैं भी एक बार आपकी भानजी को देख लूँ, तो उसने कहा—जब तुम्हारा मन करे देख लेना, कहो तो यहां बुला लूँ।

मैंने कहा नहीं, उसे यह पता नहीं होना चाहिए कि कोई उसे देखने के लिए आया है। चाची ने कहा ठीक है, ऐसा ही बन्दोबस्त हो जाएगा और फिर वाकई उन्होंने ऐसा ही बन्दोबस्त करवा दिया। मैंने लड़की को देख लिया और हाँ कर दी। सगाई हो गयी और 11 मई 1961 का विवाह निश्चित हुआ। इससे पहले मैं एक फिल्म में काम करने के लिए अनुबन्ध कर आया था। बम्बई चला गया। फिल्म का काम खत्म नहीं हुआ था कि शादी का दिन आ गया।

विवाह के ठीक एक मास बाद हम कश्मीर में हनीमून मना रहे थे कि उन्ही दिनों वी. शान्ताराम अपनी एक फिल्म की शूटिंग करने कश्मीर आये। हम भी उसी होटल में ठहरे थे, जहाँ वह ठहरे थे। भगवान दादा मुझे पहले से ही जानते थे क्योंकि उनकी एक फिल्म में मैंने कुश्ती लड़ी थी। उसने अन्ना साहब से मुलाकात कराई। उनकी अपनी बेटी राजश्री उस फिल्म में हीरोइन थी। महीने भर कश्मीर घूमकर पत्नी को गाँव छोड़ा और मैं कुश्तियाँ लड़ने ईस्ट अफ्रीका चला गया।

फिल्मों में प्रवेश

वैसे तो मैंने 1952 में मद्रास की एक फिल्म में कुश्ती लड़ी थी, जिसका नाम था दि वर्ल्ड! इसके बाद 1954 में 'पहली झलक' नाम की फिल्म में हास्य अभिनेता ओम प्रकाश के साथ कुश्ती लड़ी थी। ओम प्रकाश का डुप्लीकेट सौदागर पहलवान था। मतलब दाँव-पेंच और लड़ने का काम ओम जी की जगह सौदागर ने किया और चेहरा दिखाया गया था ओम जी का। इस फिल्म का हीरो किशोर कुमार और हीरोइन थी वैजयन्ती माला।

1956 में एक और फिल्म में कुश्ती लड़ी थी हास्य अभिनेता भगवान के साथ और भगवान दादा का डुप्लीकेट बना था अजीत सिंह। इस फिल्म में कुश्ती से पहले मुझे कुछ शब्द बोलने को कहा गया। मैं वे शब्द कभी गलत और कभी रिहर्सल में ठीक भी बोल जाता था। डायरेक्टर ने सात-आठ बार कोशिश करने के बार यह कहकर शाट ओ.के. कर दिया कि इसे डब कर लेंगे।

हमने कुश्ती वाला काम तो एक दिन में खत्म कर दिया, पर रात को होटल में मुझे नींद नहीं आयी। अजीत के पूछने पर मैंने कहा मैं बोल तो ठीक रहा था फिर उन्हें मेरे शब्द पसन्द क्यों नहीं आये और कई बार बीच में वह कह भी देते थे कि यह ठीक है।

अजीत सिंह ने कहा जो बात खत्म हो गयी, उस पर मिट्टी डालो और आराम से सो जाओ। पर उसके इस मिट्टी डालने वाले निर्णय से मेरी तसल्ली न हुई या अगर कोई समझदार आदमी समझाता तो तसल्ली होती। निर्माता-निर्देशक भी इतना ही जानते थे कि यह ठीक है, यह गलत। गलती कहाँ है, यह वह भी मुझे समझा नहीं पाये थे। इस गलती का मुझे तब पता चला जब मैंने उर्दू पढ़ी और बोलनी सीखी। उस्ताद हसन ने मुझे बोलने का लहजा समझाया तब जाकर बात मेरे पल्ले पड़ी।

भगवान दादा वाली फिल्म में शब्द इस तरह थे—छोड़ दो, यह तुम क्या कर रहे हो? शब्दों की पूरी कतार मैं ठीक बोल जाता था पर उस समय मुझे ये और जे के फर्क का अहसास नहीं था, इसलिए जोर लगाकर बोलता तो—जे क्या कर रहे हो? बोल जाता और आसानी के साथ बोलता तो—ये क्या कर रहे हो, हो जाता था। कभी-कभी रिहर्सल में—ये क्या कर रहे हो, निकलता तो सब कह उठते—हाँ, यह ठीक है, ऐसे ही बोल दो; पर कैमरा शुरू होते ही ये या जे हो जाता था। खैर, इस चिंता से यह सोचकर पीछा छुड़ाया कि अपने को कौन सा-एक्टर बनना है! उपरोक्त तीनों फिल्मों के अलावा तमिल फिल्म 'पूनी' में भी मैंने कुश्ती लड़ी थी। यह कुश्ती किंगकांग के साथ हुई थी तथा एक अन्य तमिल फिल्म में हास्य कलाकार बलरिआ के साथ भी कुश्ती लड़ी थी।

1960 में मुझे फिल्म में पूर्णरूप से काम करने की दावत मिली। उन्हीं दिनों बम्बई और अहमदाबाद में दंगल हो रहे थे। बम्बई में भी मद्रास की तरह फिल्म-कलाकार कुश्तियों देखने आते थे। शम्मी कपूर, नर्गिस, प्रेमनाथ तथा और भी कई कलाकार। एक दंगल में दिलीप कुमार का भाषण भी हुआ था। वह दंगल शायद किसी चैरिटी फण्ड के लिए हुआ था। दंगल के बाद मैं और पहलवान हरबंस सिंह एक साथ ही सफर कर रहे थे। एयरपोर्ट पर बैठे हुए दिलीप कुमार के भाषण की चर्चा करते हुए हरबंस सिंह ने मुझसे कहा फिल्मों में काम करने के बारे में तुम्हारा क्या खयाल है? तो मैंने उनको अपने कड़वे अनुभव वाली बात बतायी कि मुझसे तो शब्दों की एक लाइन भी बोली नहीं गयी।

कहने लगे—सीखने से सब कुछ आ जाता है, वैसे तुम्हारा चेहरा फिल्मों के योग्य है। इसपर मैंने कहा कर लो मजाक, कोई बात नहीं! तो कहने लगे मैं मजाक नहीं, सच कह रहा हूँ। अगर तुम्हें अवसर मिले तो जरूर कोशिश करना। यह बात तो उस समय भूल भुला गया था क्योंकि हम तो अपने सारे ग्रुप में सौदागर को खूबसूरत मानते थे। पर जब मुझे एक्टिंग का न्यौता आया तो मुझे हरबंस सिंह जी की बात याद आयी तो मैं सोचने लगा कि वाकई मेरा चेहरा फिल्मों में काम करने के योग्य होगा, तभी निर्माता मेरे पास आया है।

में अहमदाबाद से कुश्ती लड़कर आया था। दलजीत राव और मैं बम्बई होटल के एक ही कमरे में ठहरे थे। मेरे आने पर उसने कहा कि एक फिल्म निर्माता जो अपना टेलीफोन नम्बर और पता छोड़ गया है, तुम्हें अपनी फिल्म में लेना चाहता है। उसे फोन कर लो। मैंने कहा - नहीं, ये निर्माता ऐसे ही गपशप मारते रहते हैं। एक निर्माता ने मुझसे मद्रास में भी यही ही बात की थी। दअरसल मैं अपने

मन को पूरी तरह से तैयार नहीं कर सका था कि काम करना है या नहीं। अगर काम ढंग से न कर पाया तो बदनामी होगी और कुश्ती में जो नाम कमाया है, यह भी जाता रहेगा। दूसरी तरफ जी भी करता था और मन कहता था कि अगर फिल्मों में सफलता मिल गयी तो बूढ़ापे का सहारा, एक काम मिल जायेगा, क्योंकि कुश्तियाँ तो जवानी के साथ ही खत्म हो जाएँगी और फिर कहीं गामा पहलवान वाला या जो आम बूढ़े पहलवानों का हाल होता है, मेरा भी न हो! अन्त में सोच विचारकर निर्णय किया कि कुश्तियाँ भी न छोड़े और फिल्मों में भी कोशिश करें।

दूसरे दिन दोपहर को निर्माता देवी शर्मा मेरे कमरे में आया! मुलाकात हुई तो कहने लगा—भई वाह! लोग तो हमारे पीछे घूम रहे हैं कि हम उन्हें फिल्म में काम दें और हम आपके पीछे घूम रहे हैं और आप हमारी परवाह ही नहीं करते।

मैंने कहा—आप वाकई फिल्म बनाना चाहते हैं या फिल्म बनाने का खयाल रखते हैं?

कहने लगे—भई, मैं एक स्थापित निर्माता हूँ और कई फिल्में बना चुका हूँ। अब मैं एक ऐसी फिल्म बनाना चाहता हूँ जैसे अँग्रेजी भाषा में बनी है—'हरक्यूलीस इन चेनूज'। मैंने कहा—मुझे एक्टिंग तो आती नहीं, उसका क्या करेंगे, तो कहने लगे—हमारे निर्देशक बाबू भाई मिस्त्री ने आपकी कुश्तियां देखी हैं। उनका कहना है कि एक्टिंग की जिम्मेदारी उन पर छोड़ दी जाए।

यह सुनकर मैंने कहा—फिर मुझे काम करने में कोई संकोच नहीं।

उसपर वह बोले—तो फिर लेन-देन की बात कर ली जाए। मैं साइनिंग एमाउंट साथ लेकर आया हूँ।

मैंने कहा आपको यह कैसे यकीन था कि मैं काम करने के लिए राजी हो जाऊँगा? तो बोले—जब तुमने मुझसे कॉन्ट्रैक्ट नहीं किया तो थोड़ा मायूस हुआ था, पर न जाने क्यों, मुझे विश्वास था कि तुम मेरी फिल्म में जरूर काम करोगे। अब आखिरी बात भी तय कर लें तो इत्मीनान हो जाये।

मैंने कहा—मैंने काम करने की हां कर दी है, अब लेनदेन की बात बाद में कर लेंगे। पर देवी जी तो तुरन्त फैसला करने के लिए उतावले थे। मैंने कहा ठीक है, फैसला अभी किये देते है, आपकी फिल्म में मुझे कितने दिन काम करना होगा? सोचकर कहने लगे—60 दिन तो लग ही जाएँगे।

मैंने कहा फिर आप मुझे 60 हजार रुपया दे देना।

देवी शर्मा बड़े चतुर इन्सान थे। भांप गये कि मैंने तो सीधा ही एक हजार रुपया रोज के हिसाब से माँगे हैं। कहने लगे अगर काम 50 दिन का हो तो?

ठीक है, आप 50 हजार दे देना।

—अगर काम 40 दिन में खत्म हो गया तो? उन्होंने पूछा।

—तो 40 हजार दे देना, मगर इससे कम नहीं लूँगा, काम चाहे 30 दिन का हो!

बड़े चालाक निकले वह। कहने लगे—पाँच हजार ये पकड़िये जो मैं लेकर आया हूँ। हजार रुपया प्रतिदिन शूटिंग पर लेते रहना। अगर काम 30 दिन में हो गया तो आपको मिल गये 35 हजार और अगर काम 40 दिन में खत्म हुआ तो आपको मिल गये 45 हजार।

उसने इस ढंग से समझाया कि मैं मान गया। फैसला यह हुआ कि अगर मुझे किसी दूसरे शहर में कुश्तियाँ करने बुलाया गया तो आने-जाने का हवाई जहाज का किराया और होटल का रहने-खाने आदि का खर्च भी यह देंगे, क्योंकि बम्बई में कुश्तियों का टूर्नामेंट तो खत्म होने वाला था।

देवी शर्मा की फिल्म का नाम था—किंगकांग। यह नाम इन्होंने अँग्रेजी फिल्म किंगकांग देखकर रखा था। दरअसल पहवान किंगकांग का नाम भी इस अँग्रेजी फिल्म की प्रसिद्धि और किंगकांग की ताकत के किस्से देखकर ही पड़ा था। किंगकांग का असली नाम एमिल जाइआ था। मैंने देवी शर्मा से कहा—फिल्म का नाम अरग किंगकांग रखा है तो पहलवान किंगकांग को भी ले लो। क्योंकि उन्हें मेरे साथ लड़ने के लिए कोई पहलवान चाहिए था। मेरी बात उन्हें पसन्द आयी तो उन्होंने जाकर किंगकांग को साइन किया।

फिल्म की आधी शूटिंग तो बम्बई के दंगलों के साथ-साथ हो गयी, पर एक बार देवी शर्मा का खामखाह नुकसान हो गया। मैं ईस्ट अफ्रीक में कुश्तियां लड़ रहा था कि उन्होंने शूटिंग का कार्यक्रम तय कर लिया। मैं नौरोबी से बम्बई पहुँचा। चलने से दो-तीन दिन पहले पता लगा कि पीले बुखार का टीका लगवाना है। मैंने लगवा तो लिया, पर बम्बई इयरपोर्ट वालों ने मुझे कुरांटीना में बन्द कर दिया। कहने लगे—यही टीका 15 दिन पहले लगवाना चाहिए था। देवी ने बड़ी कोशिश की, कि किसी तरह मुझे शूटिंग करने की इजाजत मिल जाए, पर उसकी किसी ने न सुनी। वह रोज कुरांटीना में मेरे लिए खाना बनवाकर लाता था और मैं अपने जैसे अन्य अनाड़ियों के साथ टेबल-टेनिस खेलकर अपना दिन काटता था। जब 7 दिन रहने से भी बात न बनी तो देवी ने कहा —अब तो रुकना बेकार है। यह शूटिंग अब दुबारा ही करनी पड़ेगी क्योंकि मेरे साथ काम करने वाले कलाकारों के दिन खत्म हो चुके थे और उनकी डेट्स फिर से लेनी पड़ेंगी।

कुरांटीना से ही नौरोबी की वापसी टिकट ली और अफ्रीका पहुँच गया। अफ्रीका की कुश्तियों के बाद मैंने किंगकांग की शूटिंग पूरी कर दी। कलकत्ता में कुश्तियाँ और बम्बई में शूटिंग करने मैं आता-जाता रहा।

एक बार 'किंगकांग' के रश प्रिंट देखकर हम लैब से बाहर निकले। उस समय तक दो-तिहाई फिल्म बनी होगी। मुझे दो निर्माता और मिले। उनमें एक पंजाबी और एक राजस्थानी था। पंजाबी, दर्शनलाल सभरवाल कहने लगा—पहलवान, तुमसे एक बात करनी है।

जरूर कहिए, क्या बात करनी है, तो बोले चलो रेस्टोरेंट में बैठकर बात करते हैं। हम लैब के सामने ही एक रेस्टोरेंट में बैठ गये। दर्शनलाल तथा दूसरे सज्जन, जिनका नाम रामकुमार वोहरा था, ने एक-एक फिल्म बनाने की इच्छा जाहिर की। कहने लगे—हम आपको साइन करना चाहते हैं।

मैंने कहा—मैं बम्बई में तो रहता नहीं। शूटिंग के लिए बाहर से आना पड़ता है। मेरे लिए दिक्कत वाली बात है। फिर भी मैं आपको सोचकर बताऊँगा।

रामकुमार ने होटल तक मुझे लिफट दी। रास्ते में बातें करते हुए मैंने उससे कहा—मेरे काम करने के मुआवजे के अलावा, जहाँ से भी मैं आऊँगा, आने-जाने का हवाई जहाज का किराया तथा होटल का रहने-खाने का खर्च देना पड़ेगा।

रामकुमार कहने लगा—मेरी एक राय है पहलवान, अब आप स्थायी रूप से बम्बई में ही रहना शुरू कर दें। आपके पास फिल्मों का इतना काम आयेगा कि कुश्तियाँ छोड़कर सिर्फ फिल्मों में ही काम करने लगोगे।

मैंने कहा आगे चलकर क्या होगा, कोई नहीं जानता। हाँ, अब मैं यह जानता हूँ कि फिल्मों में काम करने के लिए कुश्तियाँ नहीं छोड़ूँगा।

दूसरे दिन मैंने शूटिंग करते हुए अपने निर्देशक बाबू भाई मिस्त्री से सलाह मांगी कि दर्शन और रामकुमार की फिल्में साइन करनी चाहिए या नहीं, तो बाबू भाई ने कहा अगर फिल्मों में काम करना है तो जरूर ये फिल्में साइन कर लो क्योंकि एक फिल्म की सफलता हो या नहीं, कोई नहीं जानता, मगर तीन में से कोई तो कामयाब होगी। मैंने कहा ठीक है, दोनों में से एक साइन करते हैं।

मैं अभी सोच ही रहा था कि दो दिन बाद रणजीत स्टूडियो में मेरी शूटिंग पर दर्शन आया और मेरे हाथों में जबरदस्ती 500 रुपये, टोकन मनी पकड़ा गया और जाकर रामकुमार को कहा कि मैंने तो पहलवान को साइन कर लिया है, अब रामकुमार मेरे पीछे ही पड़ गया। कहने लगा आपने उसकी फिल्म साइन कर ली, अब हमारी नहीं करेंगे तो हमारी बदनामी होगी। मैंने और दर्शन ने एक साथ आपसे

बात की थी। मैंने कहा मैं दोनों में से एक ही करना चाहत था सो मैंने कर ली। अब आप मुझे क्षमा करें।

पर रामकुमार भी एक हजार रुपये मेरे हाथों में थमाकर चलता बना। इन दोनों को मैं पहली फिल्म के कांट्रैक्ट की रकम बता चुका था और ये उससे भी कम पैसा देना चाहते थे क्योंकि ये फिल्में रंगीन बनाना चाहते थे। हां एक बात कहते थे कि अगर फिल्म किसी भी एक सिनेमा में 15 सप्ताह लगातार चल जाएगी तो वे मुझे 'किंगकांग' जितने पैसे देंगे, नहीं, तो दस-दस हजार कम। खैर, जो भी हुआ ठीक ही हुआ।

दर्शनलाल ने तो 'सैमसन' की शूटिंग किंगकांग पूरी होने से पहले ही शुरू कर दी पर 'हरक्यूलीस' तब शुरू हुई जब किंगकांग हिट हो गयी और मेरी दूसरे निर्माताओं के साथ अनुबन्ध दूनी रकम से भी ज्यादा का हुआ था। पर मैंने इनसे जो जुबान की थी उतने में ही काम किया। इन दिनों मैंने बम्बई में एक फ्लैट भी खरीद लिया था। सोचा अगर फिल्में सफल हो गयी तो वाह-वाह वरना् कुश्तियों के लिए भी बम्बई को ही केन्द्र बनाया जाए।

किंगकांग की शूटिंग समाप्त हो चुकी थी। मार्च 1962 में हम बरुआ साहब के लिए गुवाहाटी में कुश्तियाँ लड़ रहे थे कि मुझे अमृतसर से पत्र मिला कि मैं एक लड़की का बाप बन गया हूँ। कुछ दिन बाद पत्नी का पत्र आया। लिखा था कि उसे अफसोस है कि वह हमें लड़का न दे सकी। मैं इस हीन भावना से उभर चुका था। शायद बाहर के देशों की सभ्यता का असर मेरे मन पर था। मैं लड़का लड़की में ज्यादा फर्क नहीं महसूस करता था और अपने मन की बात मैंने पत्नी को लिख दी। औलाद तो औलाद है चाहे लड़का हो या लड़की। हम अपनी संस्कृति के अनुसार औलाद इसलिए चाहते हैं कि हमारे बाद हमारा नाम लेवा कोई रहे और बुढ़ापे में सेवा करवाने का लालच भी हमारे मन में होता है। इन कामों को पूरा करने के लिए लड़की या लड़का दोनों एक जैसा काम कर सकते हैं, पर शर्त यह है कि तुम्हारे अपने में करवाने का सामर्थ्य होना चाहिए।

मैंने अपने साथी पहलवानों को लड़की होन की खुशी में पार्टी दी। सभी ने शराब आदि पी और खुशियाँ मनायी। एक-दो ने कहा—कोई बात नहीं, भगवान लड़का भी जरूर देगा। मैंने कहा—मैं यह पार्टी खुशी मनाने के लिए दे रहा हूँ, दुख मनाने के लिए नहीं। इस पर एक ने कहा भई वाह! हमारे पहलवान का दिल भी बड़ा है। मैंने इस मसले पर चुप रहना ही ठीक समझा और उनका रुख देखकर दूसरी बातें शुरू कर दी तो जाकर पार्टी का माहौल बदला!

1962 के अगस्त में मैंने अपनी पत्नी व लड़की को बम्बई बुला लिया। इसी महीने किंगकांग रिलीज हुई थी। यह फिल्म इतनी सफल हुई कि बहुत सारे निर्माता मेरे पास आये और मुझे शूटिंग की तारीखें तय करने के लिए एक सचिव की आवश्यकता पड़ी। श्री ललित सी. दोषी, जो ललित भाई के नाम से जाने जाते थे, को सचिव नियुक्त किया गया। यह गुजरात के रहने वाले थे, पर स्थायी रूप से बम्बई में बस गये थे। इस पद पर वह बहुत ही समझदार साबित हुए। मेरे अलावा यह अजीत व प्राण साहब का काम भी देखते थे। अनुभव होने के कारण इनका नाम निर्माता पहले ही जानते थे। मेरे पास फिल्मों का काम इतना ज्यादा हो गया कि केवल ललित भाई को ही पता होता था कि मेरी कितनी तारीखें किस निर्माता के पास हैं। किस समय कहां शूटिंग करने जाना है। रोज सवेरे ललित भाई आ जाते थे कार्यक्रम बताने अपनी कार मैं खुद चलाता था। क्योंकि 1959 में मैंने एक अम्बेसडर कार खरीद ली थी और जहां भी कुश्तियां होती, कार से ही जाता था। यह कार इतनी बढ़िया थी कि इसने रास्ते में मुझे कभी धोखा नहीं दिया था। मद्रास से श्रीनगर और कलकत्ता से बम्बई तक हम इससे सफर करते थे। ललित भाई ने जबरदस्ती एक ड्राइवर रखवा दिया। कहने लगे–जब शूटिंग करके थक जाते हो, तो कार ड्राइव करना ठीक नही, साथ ही शूटिंग के दौरान एक सेवादार भी चाहिए क्योंकि अधिकतर मैं दोपहर का खाना घर से ही ले जाया करता था। पैसे ज्यादा आने के कारण या शोमैन शिप करके, पता नहीं क्यों, पर ललित भाई ने मुझे कार न चलाने की हिदायत करके निकम्मा कर दिया। इसके बाद ड्राइवर रखने की आदत-सी पड़ गयी। फिर उसने मेरी कार भी बदल दी। अम्बेसडर की जगह मर्सडीज आ गयी, पर मैं अपनी अम्बेसडर को छोड़ने के लिए तैयार न था। ललित ने कहा ठीक है, अगर आप इसे नहीं बेचना चाहते तो यह भी रखे रखो। इसे मैं चला लिया करूँगा। यह कार ललित भाई के पास कोई 7-8 साल रही होगी।

मेरी फिल्मों में बहुत प्रसिद्धि हुई, पर कुश्ती के शौकीन बहुत गुस्सा हुए। मेरे प्रशंसकों ने बहुत खत लिखे। उत्तर प्रदेश से किसी ने मुझे एक खत लिखा, जिसमें उसने शिकवे भरी एक लम्बी कविता लिखी। उसके कुछ बोल इस तरह

तुम भारत के भीम हो

बजाते क्यों बीन हो...आदि । मैंने अपनी कुश्ती प्रेमियों को लिखा कि मैं कुश्ती बिल्कुल नहीं छोड़ रहा, बाकायदा अभ्यास जारी है। तब जाकर कहीं उन्हें धीरज आया। उनका खयाल था कि फिल्मों की चमकदमक और हुस्न का बोलबाला

पहलवान से पहलवानी भुला देगा, पर मैं अपने इरादे का पक्का था। फिल्मों में काम करने के अलावा मैं फिल्मी दुनिया की रंगीनियों से दूर रहता था। देर रात वाली पार्टियों में नहीं जाता था। दो-तीन वर्ष फिल्मों में रहने के बाद भी मैं पूरी लगन के साथ कुश्तियां लड़ता रहा, तब जाकर मेरे प्रशंसकों को यकीन आया कि वाकई ही मैं सच बोल रहा हूँ।

मुश्किल तो बहुत थी पर व्यायाम के लिए मैं समय जरूर निकालता था साथ ही आरम्भिक फिल्मों में भी कुश्ती लड़ना और लड़ाई के सीन करना रोज का काम था। पहली 4-5 फिल्मों में मेरी अपनी आवाज की जगह किसी और की आवाज भरी गयी तो मुझे बहुत बुरा लगा। मैंने उर्दू सीखने के लिए एक मास्टर रख लिया, पंजाबी का तो मैं पूरा ग्रन्थी था क्योंकि गाँव छोड़ने से पहले मैं श्री गुरू ग्रन्थ साहब का पाठ कर लेता था और सिंगापुर जाकर अंग्रेजी और हिन्दी भाषाएँ भी गुजारे लायक सीख ली थी, पर फिल्मों के लिए उर्दू सीखनी बहुत जरूरी थी। मैंने राजकुमार कोहली की फिल्म 'एक था अलीबाबा' साइन की तो उसके निर्देशक हरबंस ने मुझसे कहा पहलवान, तुम्हारी आवाज में बड़ा बेस है। मैं एक था अलीबाबा' में तुम्हारी आवाज रखूँगा, इसलिए तुम उर्दू सीख लो। मास्टर हसन निशी का भी मास्टर रह चुका था। इसलिए मैंने मास्टर जी को उर्दू सिखाने के लिए तय कर लिया। पर मेरे पास समय बिल्कुल नहीं था। इसलिए बेचारे दोपहर को खाने के लिए एक घण्टे की छुट्टी में मुझे पढ़ाते थे। जिस स्टूडियो में शूटिंग होती थी, मास्टर हसन वही पहुँच जाया करते थे। छह महीने की मेहनत के बाद मैं उर्दू बोलना और थोड़ी-बहुत लिखने भी लगा था। मास्टर जी ने विशेष रूप से बोलने के जो ढंग बताये, वे बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। उनसे ही मुझे ज, ज और य शब्दों के उच्चारण और बाकी शब्दों की बारीकियों का पता लगा। तब जाकर कही 1956 वाले निर्माता निर्देशक से मेरी नाराजगी दूर हुई, नहीं तो मैं उनको दोषी समझता था।

'एक था अलीबाबा' के एक सीन की बात मैं कभी नहीं भूल सकता। निर्देशक हरबंस अड़ गया था कि आवाज मेरी ही रहेगी, इसलिए सही बुलवाने की कोशिश कर रहा था। मेरा और खलनायक रामसिंह का सीन चल रहा था और मुझसे इजाजत शब्द ठीक से नहीं बोला जा रहा था। कहना केवल इतना था खादिम को अन्दर आने की इजाजत है? शाम को शूटिंग खत्म होने के बाद मुझे और रामसिंह को एक ही कार में सफर करने का मौका मिला। मुझे उदास देखकर रामसिंह कहने लगा—घबराने और उदास होने की जरूरत नहीं, हर नये आदमी के साथ ऐसा ही

होता है। मैं जब नया-नया फिल्मों में आया था तो इसी तरह बोलने में दिक्कतें आती थी, पर आज मैं लोगों को बोलना सिखाता हूँ।

रामसिंह की इस बात ने मुझे बड़ा हौसला दिया और मैं सोचने लगा क्या पता रामसिंह की तरह एक दिन मैं भी इतना अनुभवी हो जाऊँ कि लोगों को बोलना सिखाने लगूँ। सोचा तो ढीलेमन के साथा था और साथ ही आत्मा की आवाज थी–सिखाने की बात छोड़, अगर खुद को बोलना आ जाए तो बड़ी बात है।

यादगार और कुछ बढ़िया तोहफे

हिन्दी फिल्मों में तो मैं अभी अनजान था, पंजाबी तो मैं, मातृभाषा होने के कारण और अच्छी पढ़ाई के कारण, बढ़िया बोल लेता था। 1964 में मेरी पहली पंजाबी फिल्म बनी और उसके लिए सरकार की ओर से मुझे बढ़िया कालकार होने का ईनाम मिला। फिल्म का नाम था जग्गा। इस फिल्म को लोगों ने बहुत पसन्द किया था और उस वर्ष की श्रेष्ठ फिल्म का अवार्ड मुझे, श्रीमती इन्दिरा गाँधी, जो उस समय सूचना एवं प्रसारण मन्त्री थी, के हाथों से मिला। वह दिन मेरे लिए बहुत खुशी का दिन था। इसी वर्ष दूसरा तोहफा 6 मई को भगवान ने दिया। मेरे घर बेटा पैदा हुआ। सुबह-सवेरे पौ फटने से पहले मैं अपनी पत्नी को होलीफेमिली अस्पताल छोड़कर घर आ गया और शूटिंग पर जाने के लिए तैयार हो गया।

पहले फ्लैट में से अब हम एक बड़े फ्लैट में बांद्रा में आ गये थे। तैयार होकर 'सिकन्दरे आजम' की शूटिंग के लिए जाना था। जाता हुआ नर्सिंग होम में पत्नी की खबर लेने गया तो सास, जो कुछ दिन पहले ही बम्बई आयी थी, ने लाकर बेटे को मेरे हाथों में पकड़ा दिया और बधाई दी। मेरी सास मुझसे भी ज्यादा खुश लग रही थी। शायद इस करके कि अब उसकी बेटी की घर में कद्र बढ़ जाएगी, क्योंकि पहली लड़की होने के कारण, कहते हैं, मेरी माँ को खुशी नहीं हुई थी, उस समय मैं गैरहाजिर था और इस समय मेरी माँ गैरहाजिर थी। खैर, सबको खबर पहुँचायी गयी और खुशियाँ बाँटी गई। पाठ व पूजा करवाकर पुत्र की जन्म पत्री बनवायी गयी और नाम रखा गया। 'व' शब्द आया और नाम रखा गया वरिन्दर सिंह। पढ़ी-लिखी पत्नी का लाभ मुझे पहली बार महसूस हुआ। लड़के की जन्म पत्री बन गयी, वरना हमारी तरह जन्मतिथि भी सही मिलनी मुश्किल हो जाती। उस जमाने को छोड़ो गाँव में आज भी पुराना दस्तूर चला आ रहा है। देश के बँटवारे के बाद लोग इधर-उधर आये गये और विशेष रूप से नाई, मोची,

लुहार, जुलाहे हमारे गाँव से खत्म ही हो गये, पर रिवाज ज्यों के त्यों हैं। आजकल हमारे बखाले की जगह एक मजहबी सिख राम सिंह काम कर रहा है। यह बहुत समझदार आदमी लगता है। लेकिन इसका सयानपन ऐसा नहीं है कि दुनिया में आये नये जीवों की जन्म पत्री बना सके। यह तो सुभान की तरह ही, जब गाँव में 5-7 बच्चे पैदा हो जाएं तो थाने जाकर नाम लिखा देता था ताकि जनगणना के समय काम आएं।

खैर, गाँव के रीति-रिवाज तो बुजुर्गों के चलाए हुए हैं, जल्दी-जल्दी नहीं बदल सकते। क्या हुआ जो सरकार ने गांवों में पंचायती राज कायम किये हैं। रिवाज जैसे के तैसे कायम हैं। हाँ, कुछ रिवाज आजकल गांवों से गायब हो रहे हैं इनकी समाप्ति तो लगभग देश के बँटवारे के समय ही हो गयी थी। मिसाल के तौर पर, गांवों की कुश्ती, कबड्डी, गुलीडंडा, लम्बी छलाँग, ऊँची छलांग, पत्थर उठाना, बोरी उठानी या मुगदर घुमाना आदि खेल तो गांव के जीवन से किनारा ही कर गये हैं। दूसरे गाँवों की तो मैं ज्यादा नहीं कह सकता, पर हमारे गांव में ये सब खत्म हो गये हैं। खेलों की जगह गांवों में अब ताश खेलना, अफीम खानी, चुगलियाँ करना, शराब पीना आदि गन्दी आदतों/रिवाजों ने ले ली है। मन बहलाव तो इन्सान को करना ही है चाहे गन्दा, चाहे अच्छा!

मैं तो सत्रह वर्ष की उम्र में ही गांव से बाहर चला गया था और वापस तीन साल बाद आया। उसके बाद केवल आता-जाता रहा। लगातार गांव में रहने का अवसर कम मिला। वैसे मेरे कुश्तियों के अखाड़े को देखकर गांव के और दो चार लड़कों ने अभ्यास करने शुरू कर दिये थे, पर मेरे छोटे भाई सरदारा सिंह रन्धावा के अलावा कोई भी बड़ी कुश्तियों के लायक नहीं बन पाया था। मेरी पहली शादी से हुआ पुत्र प्रद्युम्न सिंह, जिसे पढ़ाने की मेरी बहुत इच्छा थी, पढ़ाई अधूरी छोड़कर कुश्ती लड़ने लगा। पंजाब में तीसरे दर्जे के मुकाबलों में लड़ने लायक हो गया था तथा आगे बढ़ने के आसार और उम्र भी थी, पर उसे बम्बई के फिल्म निर्माताओं ने बिगाड़ दिया। एक बार मुझे मिलने बम्बई आया। कुछ दिन बम्बई रहने के बाद कुछ ऐसी हवा लगी कि कुश्ती छोड़कर फिल्मी हीरो बनने में लग गया। मैंने तो कहा था कि मेरी तरह फिल्म इंडस्ट्री में प्रवेश कर। पहले एक नम्बर का पहलवान बन जा, फिर हीरो बन जाना। पर पता नहीं उसको किसने पट्टी पढ़ाई कि पहलवान मारधाड़ की फिल्मों का हीरो तो बन सकता है, पर रोमांटिक फिल्मों का नहीं। इसलिए अगर बढ़िया हीरो बनना है, तो पहलवानी छोड़नी पड़ेगी। मैंने उसका रुख देखकर कहा कि फिल्मों में भी कोशिश किये जाओ, साथ-साथ अभ्यास

भी जारी रखो। अगर फिल्मों में फेल हो गया, तो पहलवानाी कर लेना क्योंकि उस समय उसकी उम्र, एक दो साल बरबाद करके भी पहलवानी करने के योग्य थी। पर उसने पूर्ण रूप से पलवानी को त्याग दिया और जुट गया हीरो बनने की कोशिश में। चार-पाँच साल में दो-तीन फिल्मों में छोटे रोल किये और एक में हीरो भी बना—जो सफल नहीं हुई। तब जाकर उसे ज्ञान हुआ, पर तब तक पहलवानी करने के योग्य नहीं रहा था। आखिर मरेठ के पास एक फार्म खरीदा गया, जिसमें उसने खेतीबाड़ी शुरू कर दी। कहते हैं सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते। अब वह खेतीबाड़ी और दूध की डेरी का काम अच्छी तरह चला रहा है।

सन् 1964-65 में फिल्मों ने मेरा बहुत ज्यादा समय लिया। 1965 में तो बारह फिल्में एक ही वर्ष में रिलीज हुई और 1964 वाली भी चल रही थी। एक बार बम्बई शहर में दो दर्जन से अधिक सिनेमा घरों में मेरी फिल्में चल रही थी। यहाँ के एक अखबार ने इस बात का विशेष रूप से वर्णन किया कि इतनी ज्यादा फिल्में इकट्ठी कभी भी किसी स्टार की दुनिया के इतिहास में नहीं लगी।

1965 में पाकिस्तान से लड़ाई हो गयी। अखबारों में इसकी ही चार्चा थी इन दिनों मेरे पास खूब पैसा बरस रहा था। मेरे मन में आया कि मैदान-जंग में लड़ रहे जवानों का हौसला अफजाई की जाए ताकि वे भी दिल खोलकर दुश्मन कामुकाबला कर सकें। मैंने यह अनुमान अपनी कुश्तियों से लगाया था। जब पहलवान को दर्शकों की तालियों की गूँज अपने लिए सुनायी देती हैं, हौसले भरे शब्द वह सुनता है तो वाकई उसका शरीर गर्व से दूना हो जाता है और फिर जीतने के लिए वह एड़ी-चोटी का जोर लगा देता है। इसी तरह अगर देश के लिए जान से खेल रहे जवानों को यह सन्देश पहुँचे कि देशवासी आपकी कुर्बानियों पर कुर्बान होने के लिए तैयार हैं, उन्हें जरूर गर्व होगा।

इन्ही दिनों सरकार की ओर से लोगों को सहायता की अपील भी की गयी और लोगों ने दिल खोलकर सहायता की भी। मैंने रक्षा मन्त्रालय को लिख दिया कि इस लड़ाई में जो जवान परमवीर चक्र हासिल करेगा, उसे मेरी तरफ से एक हजार रुपये, जो महावीर चक्र हासिल करेगा उसे 5000 रुपये और जो वीर चक्र पाएगा उसे 250 रुपये का ईनाम दिया जायेगा। जो ईनाम की रकम की तरफ देखा जाए तो वह बहुत मामूली है, क्योंकि जो सूरमा जान पर खेल रहे हैं, उनके लिए पैसों की क्या कीमत? पर अगर भावना और प्यार-स्नेह से यह कहा गया हो कि हम जैसे और जो भी हैं आपके साथ हैं और आपकी बहादुरी की कद्र करते हैं तो फिर यह मामूली बात नहीं।

खैर, रक्षा मंत्रालय की ओर से मुझे जवानों की सूची आ जाती थी और मैं उनके लिए चैक भेज देता था। एक बार तो मैंने इस बात का लाभ भी उठा लिया। सरदार स्वर्ण सिंह उस समय रक्षा मन्त्री थे। मैं अपनी फिल्म 'नसीहत का रिलीज पर दिल्ली गया था और उनको भी निमन्त्रण दिया कि वे भी फिल्म के प्रीमियर पर आएँ। वहाँ उनको व्यक्तिगत मैं जवानों के लिए चैक दूँगा। यह कोई 22 या 23 हजार का चैक था। उनको थियेटर में ही दिया गया। यह बात लड़ाई में विजय के बाद 1967 की है। क्योंकि लड़ाई के काफी बाद ही अधिक जवानों को अवार्ड मिले थे। यह सिलसिला 1969 तक चालू रहा, बल्कि एक बार तो 1972 की लड़ाई के समय मुझे एक सूची मिल कि इतने जवानों को अवार्ड मिले हैं, आप चैक भेज दें। मैंने लौटती डाक से उत्तर लिखकर खुलासा किया कि वे ईनाम तो 1965 की लड़ाई के लिए थें अगर कोई जवान, जिसने उस लड़ाई का अवार्ड पाया है और ईनाम से रह गया हो तो मुझे लिखें। वैसे तो 1972 की लड़ाई में भाग लेने वाले जवानों ने और भी बढ़चढ़ कर काम किया था और देश के नाम की तब दुनिया में धाक जमायी थी। जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा ने 91,000 विरोधी-जवानों से हथियार गिरवाये थे। पर मेरी और मजबूरी हो गयी थी।

1965 की लड़ाई के समय अखबार में निकला था कि जो भी आर्थिक सहायता देगा, उसे इस रकम पर इनकम टैक्स नहीं लगेगा, पर जब इनकम टैक्स के अफसरों की बारी आयी तो उन्होंने टैक्स लगा दिया। मैंने अपील की कि यह रकम तो टैक्स से मुक्त होनी चाहिए थी, पर बड़ी मुश्किल से टैक्स में 60 प्रतिशत छूट मिली। इस करके 1972 में जवानों को ईनाम देने में असमर्थ रहा। और भी कई चैरिटी संस्थाओं से मुँह मोड़ना पड़ा। 23 सितम्बर 1965 को रात 12 बजे लड़ाई खत्म होने का एलान हुआ। रात कोई साढ़े ग्यारह बजे मैं और मेरी माता जी मेरी पत्नी का प्रसव के लिए अस्पताल लेकर गये। शहर में कार की लाइटें जलानी मना थी। पूर्ण रूप से ब्लैक आउट था। अभी हम अस्पताल में ही थे कि एलान हुआ कि लड़ाई बन्द हो गयी। अब आप शहर में रोशनी कर सकते हो। हमने शुक्र मनाया कि अब घर जाते समय कार की लाइट जला सकेंगे। शहर में रोशनी के एलान के फौरन बाद अस्पताल के प्रतीक्षालय में बैठे तो पत्नी के रोने की आवाज सुनायी दी। मेरे जीवन का यह पहला अवसर था कि किसी औरत को बच्चा जन्मते समय हाजिर था। मेरी माँ कभी मेरे पास बैठे तो कभी अन्दर चली जाये। बड़ा दर्दनाक दृश्य था। मैं बैठा सोच रहा था कि बुजुर्गों ने ऐसे ही नहीं कहा कि माँ का रिश्ता सबसे बड़ा है। बाकी सब इसके पीछे हैं।

रात को बारह बजकर बीस मिनट हुए थे कि नर्स के सन्देश ने दर्दभरा माहौल खुशी में बदल दिया, जब उसने आकर बधाई दी कि लड़का हुआ है। मैंने कहा बच्चा बड़ा भाग्यवान है। देश में रोशनी लेकर आया। हम तो सत्रह-अठारह दिन से अन्धेरे से तंग आ चुके थे। इसिलए इसका नाम रोशन सिंह रखना चाहिए, पर रीति रिवाज के अनुसार लड़के के नाम का पहला अक्षर 'अ' निकला तो सोच विचार के बाद लड़के का नाम अमरीक सिंह रखा गया।

चार साल चार महीने में तीन बच्चे! हम अच्छी तरक्की कर गये थे। इन्हीं दिनों कम बच्चे पैदा करने की खुसर-पुसर लोगों में शुरू हो गयी थी। जो आगे चलकर जोर पकड़ गयी और फिर हमने रेडियों और पोस्टरों के जरिये इसका प्रचार देखा। पत्नी ने कहा—लोगों से मिलकर चलना चाहिए। आजकल पढ़े-लिखे लोग 2 या 3 सन्तानों से ज्यादा बच्चे नहीं होने देते। मैंने कहा—अपने को हर बात में चैंपियन बनने की आदत है। तुम फिक्र न करो और बच्चे पैदा करती चलो। इनको अच्छा शहरी बनाने की जिम्मेदारी मुझे पर छोड़ो। कम तो उन्हें पैदा करने चाहिए जिनके पास बच्चों को सम्भालने के साधन नहीं हैं। अपने को कैसी चिन्ता! पर पत्नी मानी और बेचारी ने यत्न शुरू कर दिये। पर फिर भी दो लड़कियां और आ गयी और पांच में परमेश्वर जानकर वाहे गुरु का शुक्र अदा किया।

अब ठीक-ठाक हमारे बच्चे जवान हो गये हैं और स्वस्थ हैं। पढ़ाई में होशियार और मिलनसार हैं। 29 मई 1968 को मैं वर्ल्ड चैंपियन जीत गया। 1957 में जो लन्दन में मुझे वर्ल्ड चैंपियनशिप में लड़ने का मौका मिला था, उसके बाद मैं कई बार कोशिश कर चुका था पर मैं उप-विजेता ही रह जाता था। अन्त में 1968 में बम्बई में मैंने विश्वविजेता लॉ थेस को हराकर यह सम्मान जीत ही लिया और एलान कर दिया कि कुश्तियों के क्षेत्र में मैं उच्चकोटि का सम्मान पाने के बाद अब इसको 2 साल के लिए डिफेंड करूँगा और फिर कुश्तियों से संन्यास ले लूँगा। पर हुआ उलटा। जब भी मैंने कुश्तियाँ छोड़ने की बात की, मेरे प्रशंसकों ने बहुत एतराज किया। विश्व विजेता बनने के बाद मैंने 2 बार दुनिया का दौरा किया और सभी देशों में जीत हासिल की। अपने देश में भी कुश्तियाँ लड़ी।

वैसे तो 1959 में कॉमनवेल्थ चैंपियन बनने के बाद कोई भी कुश्ती मैं हारा नहीं है। हाँ वर्ल्ड चैंपियन में कुछ बराबर अवश्य रही थी। सन् 1968 से लेकर जून 1983 को आखिरी कुश्ती दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम में राष्ट्रपति के सामने लड़कर बिना हारे, कुश्तियों से संन्यास ले लिया। पिछले दो-तीन साल से मुश्किल व्यायाम करना मेरे लिए टेढ़ी बात हो गयी थी। इसलिए 'जो बीती सो वाह-वाह बीती' कहकर कुश्तियों से रुखसत ले ली।

मैं फिल्म निर्देशक कैसे बना?

सन् 1970 में मैं और मेरे दौस्त रामिन्द्र सिंह और आर.एस. थापर ने एक पंजाबी फिल्म बनाने की योजना बनायी। इन्हीं दिनों एक पंजाबी फिल्म बनी थी --'नानक नाम जहाज है'। इससे प्रभावित होकर हम यह फिल्म बनाने लगे थे। फिल्म का नाम रखा गया–'नानक दुखिया सब संसार'। इस फिल्म को बनाने के लिए हमने उस समय का बढ़िया डायरेक्टर साइन किया बलदेव झींगठा। कहानी लिखवानी शुरू की क्योंकि बलदेव पहले भी कई पंजाबी फिल्में बना चुका था, इसलिए उसका ढंग वही था। द्विअर्थी संवाद और फूहड़ कॉमेडी। वह जो भी कहानी लिखवाकर लाये, हम रद्द करते रहे। एक दिन उसने खीझकर इस्तीफा लिखकर हमारे हाथ में थमाया और साथ ही मुझसे कहा अगर इतनी की नुक्ताचीनी करनी है तो खुद ही निर्देशन करो और मुझे छुट्टी दो।

हम एक दूसरे के मुँह की तरफ देखते रह गये। अन्त में यह चैलेंज कबूल किया। मैंने कहा–मैं स्वयं दिर्नेशन करूँगा।

हमने पंजाबी के प्रसिद्ध उपन्यासकार नानक सिंह की कहानी ली और उसका फिल्मीकरण खुद किया। इस कहानी के लिए मेरे अलावा श्री पृथ्वीराज कपूर, बलराज साहनी, एस. सुखदेव, अंचला सचदेव मीना आदि और भी प्रसिद्ध तथा बेहतर कलाकारों को अनुबन्धित किया गया। प्राण साहब ने मेहमान कलाकार के रूप में काम किया। यह फिल्म बहुत ही सफल हुई और पंजाब के प्रसिद्ध अखबार 'अजीत' ने इसे 'नानक नाम जहाज है' से भी अच्छी फिल्म बताया, क्योंकि हमने सिख धर्म के उसूलों को लक्ष्य मानकर, विशुद्ध सामाजिक फिल्म बनायी थी, पर नानक नाम जहाज है में चमत्कारी दृश्य दिखाये गये थे, जो सिख धर्म में बिल्कुल मना हैं।

वैसे हमारी धार्मिक हिन्दी फिल्मों में ऐसे ही चम्तकारी दृश्यों की भरमार होती है और दर्शकों को ये अच्छे भी लगते हैं। हमारी फिल्म में भी एक दो जगह

पर ऐस ही दृश्य थे, जहाँ हम चमत्कार दिखा सकते थे, पर बलराज जी ने मुझे विशेष रूप से मना किया। कहने लगे–तुम इतनी अच्छी फिल्म बनाकर अब अन्त में लोगों को बरगलाने लगे हो।

हमने उनकी बात पल्ले बांध ली और फिल्म को चमत्कारी रूप बिल्कुल नहीं दिया। बलराज जी ने हमारे गांव में शूटिंग के दौरान कुछ दिन रहकर गांव के लोगों के साथ अच्छे सम्बन्ध बना लिये। फिल्म के अन्त में एक दृश्य बड़ा ड्रामेवाला था। मैंने लिखकर बलराज जी को दिया और कहा इसे सही करके अगर ठीक न समझें तो खुद नये सिरे से लिख लें, क्योंकि यह दृश्य उनपर ही फिल्माया जाना था। मेरा लिखा पढ़कर कहने लगे–मुझे यह बिल्कुल पसन्द है। इसमें गांव की साधारण भाषा है और अगर मैं लिखूँगा तो यह स्वाद नहीं आएगा। उन्होंने मेरा दिल रखने के लिए कहा या वाकई उनको दृश्य अच्छा लगा, यह तो वही जानते थे, पर दृश्य बहुत अच्छा जमा। पापा पृथ्वीराज जी भी कुछ दिन गांव रहे थे। हमारे गांव के लोग आज तक इन हस्तियों के गुण गाते हैं।

'नानक दुखिया सब संसार' की सफलता के बाद मेरा हौसला बढ़ गया। मैंने एक हिन्दी फिल्म बनायी –'मेरा देश मेरा धर्म'। इस फिल्म का मकसद था देश पहले धर्म बाद में। इसकी कहानी चूँकि बंगला देश की पृष्ठभूमि पर थी, इसलिए इसको सेंसर में बहुत ही दिक्कतें आयी और बड़ी मुश्किल से पास हुई। इसके बाद पंजाबी में फिल्म बनायी–'भगत धन्ना जॅट'। यह फिल्म भी लोगों ने बहुत पसन्द की और यह बहुत कामयाब रही। पंजाबी में ही 'ध्यानू भगत' बनायी जो कामयाब रही। इसके बाद बहुत ही महँगी पंजाबी फिल्म बनायी–'सवा लाख से एक लड़ाऊ'। इस फिल्म में सिख इतिहास का चित्रण किया, पर इसमें बिना बात ही बहुत अधिक बाधाएं आयी। सिख कौम को कितनी परेशानियां आयी हिन्दुओं के लड़के किस तरह सिख बनकर जुल्म का मुकाबला करते रहे, बल्कि हर हिन्दू के घर में एक लड़का सिख बनकर देश और कौम के लिए कैसे कुर्बानियां करता रहा। इसमें यही बताने का प्रयास किया था कि समय के सिख, हिन्दू और मुसलमान दोनों की रक्षा करते थे। उनका मिशन था–जुल्म को मिटाना और गरीबों तथा बेबसों को न्याय दिलवाना।

मैं जब भी फिल्म बनाने का कार्यक्रम बनाता हूँ तो पहला प्रश्न मन में होता है कि यह फिल्म मैं क्यों बना रहा हूँ। इससे दर्शकों को क्या लाभ होगा? फिल्म मन बहलाव का साधन तो है ही, पर उसके साथ कोई अच्छी बात भी कहनी चाहिए। 'भक्ति में शक्ति' मैंने यह हिन्दी फिल्म बनायी थी। दिल्ली में इसने रजत जयन्ती मनायी। उत्तर भारत के सभी क्षेत्रों में यह कामयाब रही।

'मेरा देश मेरा धर्म' एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण फिल्म है। इसमें आप लोगों की ओर से जुल्म के खिलाफ बगावत दिखाई गयी है। हुकूमत कोई भी हो, जब वह लोगों के साथ अन्याय ओर जुल्म करना शुरू कर दे तो उसे बरदाश्त नहीं करेंगे और जीत अंत में सच्चाई की ही होगी। उस समय में बंगलादेश की पृष्ठभूमि पर 3 फिल्में बनी थीं। एक आई.एस. जौहर ने बनायी और एक श्री चेतनआनंद ने, पर फिल्म इंडस्ट्री के सबसे प्रसिद्ध अखबार 'स्क्रीन' ने 'मेरा देश मेरा धर्म' को दोनों फिल्मों से उत्तम बताया था। इससे मेरा हौसला और बढ़ा। क्योंकि दूसरी दोनों फिल्मों के निर्माता बड़े ऊंचे स्तर के निर्माताओं में से थे। उनके मुकाबलें में अगर मेरी फिल्म की तारीफ इंडस्ट्री का सबसे बड़ा अखबार करे तो हौसले बढ़ने वाली बात तो होनी ही है। मेरी इस फिल्म के डायलाग प्रसिद्ध लेखक अज़ीज़ कैसी ने लिखे थे। इस फिल्म का एक दृश्य बड़ा रोमांचक था। बाप पुलिस अफसर और बेटा बाग़ी। दोनों की मुलाकात अचानक होती है। अपने-अपने कर्त्तव्यों में बंधे एक-दूसरे पर कैसे तोहमत लगाते हैं।

यह दृश्य एक तरह से फिल्म का निचोड़ था। मुझे अज़ीज़ जी का लिखा पंसद न आया। दुबारा लिखवाया गया। फिर भी मजा न आया। हमने मास्टर हसन से लिखवाने की कोशिश की, पर बात न बनी। अंत में मैंने खुद लिखकर मास्टर हसन से दुरुस्त करवाया तो उन्होंने इस दृश्य की बड़ाई करके मुझे लिखने के लिए प्रेरित किया।

फिर मैंने 'भक्ति में शक्ति' के भी कई दृश्य लिखे। जब हम हिंदी फिल्म 'रुस्तम' के निर्माण की तैयारियां कर रहे थे तो मेरा 'मुख्य सह-निर्देशक' बदल गया। पूना इंस्टीट्यूट से नया आया विद्यार्थी सुरेंदर धातीवाल मेरा सहायक बना। यह लड़का बड़ा पढ़ा-लिखा और समझदार है। रुस्तम का स्क्रीन प्ले इसने लिखा और संवाद लिखने के लिए किसी अच्छे लेखक को रखना चाहता था। मैंने कहा फिल्म के बजट के हिसाब से जो भी तुम्हें सही लगे रख लो। तीन-चार लेखकों को आजमाया, पर बात न बनी। मैंने कहा घर की मुर्गी दाल बराबर होती है। मैंने कुछ लिखा है, यह पढ़ लो, अगर कोई इससे बेहतर लिखे तो ठीक, नहीं तो इसे फिल्मा लेंगे।

वह कहने लगा ठीक है फिल्म में 5-6 दृश्य बड़े ड्रामेटिक थे। सुरेन्दर ने कोशिश की, कि किसी से लिखवाये जाएं, पर अंत में मेरे लिखे ही मुनासिब समझे गये और फिर फिल्म रुस्तम के सभी संवाद मैंने खुद लिखे।

एक बार पत्रकारों ने मुझसे पूछा अब तो आप लिखने भी लगे हो, कहां आपके संवाद दूसरों से डब करवाये जाते थे, पर आज बोलते भी खुद हो और लिखते भी।

इस बारे में कुछ कहिए—आपको यह साहित्य रचना का अनुभव किस तरह हुआ। मैंने कहा आप गलतफहमी में हैं, फिल्मी लेखन में न साहित्य होता है और न ही शुद्ध भाषा बोली जाती है। फिल्म की कहानी के शब्द तो लोगों का मनोरंजन करने के लिए हैं। ड्रामे में जान होनी चाहिए लिखा चाहे किसी भी भाषा में हो और साधारण ही क्यों न हो। वह मेरी बात से प्रसन्न होकर कहने लगे आपकी सच्चाई और सादगी ने हमें मोह लिया है। फिर देश की भाषाओं पर बहस छिड़ गयी। मैंने उन्हें अपने दिल की बात बतायी—मातृभाषा से सबको प्यार होता है और मुझे भी है। पर मैं दूसरे लोगों की तरह यह नहीं कहता कि मेरी मातृभाषा ही सबसे अच्छी है। भाषाएं सभी अच्छी हैं अगर आपको बोलनी आती हों। आपको मातृभाषा क्यों अच्छी लगती है? क्योंकि इसमें काम करते समय बहुत सहजता महसूस करते हो। दिमाग पर जोर नहीं देना पड़ता। जो भी मन में आया बिना ज्यादा सोचे बोले गये और सामने वाले की सुनकर आसानी से समझ गये। पर दूसरी भाषा, जो आपने सीखी है, उसमें बातचीत करते हुए आपको ज्यादा मजा नहीं आएगा क्योंकि दिमाग को सोचकर बोलना पड़ेगा। वैसे मेरा विचार है कि हमें भाषा के मामले में ज्यादा सख्त रवैया नहीं अपनाना चाहिए। बचपन में बच्चे को जो भी सिखा दोगे वही उसकी मातृभाषा बन जाएगी। तभी तो समय-समय पर भाषाएं बदलती रही हैं। जिसका जोर पड़ा उसने अपनी भाषा दूसरे पर लागू कर दी और बेचारे लोगों ने जरूरत के अनुसार वह भाषा सीख ली। ख़ैर, मैं तो आपको अपने निर्देशक बनने का अनुभव बता रहा था, यह भाषा का चक्कर बीच में आ गया।

मैंने अब तक 3 हिन्दी और 5 पंजाबी फिल्मों का निर्देशन किया है। पंजाबी फिल्मों ने तो कुछ इनाम भी पाये हैं पर हिंदी में अभी मेरा स्थान नहीं बना। कोशिश बराबर जारी है।

पिछले कुछ सालों से मेरे दिमाग में पंजाब में फिल्म इंडस्ट्री लगाने का भूत सवार है। चंडीगढ़ के निकट, मुहाली में 5 एकड़ जमीन लेकर एक स्टूडियो का निर्माण किया है। मेरी पूरी कोशिश है कि पंजाब में फिल्म इंडस्ट्री कायम हो जाए। पूरे उत्तरी भारत में, देश के बंटवारे के बाद कोई भी फिल्म स्टूडियो नहीं बना था। दक्षिण के सभी सूबों में फिल्म केंद्र हैं। दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में फिल्म स्टूडियो और फिल्म लैब भी हैं और बड़े-बड़े केंद्रों से हर साल सैकड़ों के हिसाब से फिल्में बनकर रिलीज होती हैं, पर उत्तरी भारत में कोई भी ऐसा केंद्र नहीं। हालांकि धरातल की प्राकृतिक सुंदरता के लिहाज से इस तरफ सुंदरता अधिक है। कश्मीर, हिमाचल, राजस्थान, पंजाब और हरियाणा आदि खूबसूरत नजारों से भरे पड़े हैं, फिल्म फिल्माने के लिए अत्यंत सुंदर हैं। आवश्यकता है केवल एक फिल्म केंद्र बनाने की।

मुझे 'रामायण' में हनुमान जी की भूमिका कैसे मिली?

टी.वी. सीरियल रामायण चर्चित हो जाने के कारण सभी कलाकारों को बहुत लाभ हुआ। लोगों ने मेरे हनुमान जी के चरित्र को ऐसे महसूस किया जैसे स्वयं हनुमान जी प्रत्यक्ष आकर अदाकारी कर रहे हों। मैं इस चरित्र को निभाने से पहले महाबली हनुमान जी से आशीर्वाद के लिए क्षमा याचना करता था, जिस तरह हनुमान श्रीराम और सीता माता की सेवा बिना किसी लालच के करते रहे थे, उसी तरह मैं भी हनुमान जी से सच्ची भक्ति का चरित्र निभाने का वरदान मांगता था और मैं महसूस करता हूँ कि उन्होंने मुझे यह वरदान अवश्य दिया है, तभी तो सारी जनता ने मेरे इस चरित्र को पसन्द किया और सराहा, वरना मैं किस योग्य था।

इस किरदार को करने के लिए श्री रामानन्द सागर के पास कई पहलवान पहुँचे, जो समझते थे कि उनका शरीर इस हनुमान जी के चरित्र को निभाने योग्य है पर श्री रामानन्द सागर के हृदय और दिमाग में मेरी तस्वीर इस चरित्र को निभाने के लिए इस तरह दृढ़ता से जमी हुई थी कि उनको मेरे बिना या मेरी तुलना में दूसरा कोई व्यक्ति जमता ही नहीं था। हालाँकि मैंने इस चरित्र को पाने के लिए कोई कोशिश, कोई जद्दोजहद नहीं की, फिर भी यह सुनहरी मौका मुझे क्यों मिला? इसका तो यही मतलब निकलता है (जो जब-जब होना है, तब-तब होना है)। यह महाबली की अपनी इच्छा थी कि जो सागर साहब को मेरे हक में प्रेरित करती रही होगी। बहुत से विद्वान और सियाने लोग मुझसे पूछते हैं कि हनुमान जी की भूमिका करते हुए मैंने कैसा महसूस किया? बहुत से पत्रकारों ने भी पूछा।

मैंने उनको महाबली में अपनी आस्था के बारे में बताया। विशेष रूप से पहलवान शक्ति के प्रतीक हनुमान जी को बहुत मानते हैं। हम भगवान में आस्था रखने वाले लोग इस बात को मानते हैं कि हनुमान जी आज भी इस मृत्युलोक में विचर रहे हैं। मेरे साथ दो बार ऐसा ही वाकया हुआ जो यहां बयान करता

हूँ। नीचे लिखी घटना दोनों बार जब घटी, जब मैं हनुमान जी की पोशाक पहनकर उनका चरित्र निभाने में व्यस्त था।

एक बार वृन्दावन स्टूडियो में मेरा अरुण गोविल जो श्रीराम जी की पोशाक में थे, के साथ दृश्य चल रहा था कि अचानक मैं अपने संवाद भूल गया और कुछ आनन्द और मस्ती जैसे महसूस हुई। सागर साहब कहने लगे चल भई, अपने संवाद बोल। मैंने कहा–जी, मुझे थोड़ा समय दो। उन्होंने कहा कि ठीक है।

मैंने एकान्त में जाकर सीन याद करने की कोशिश की, पर सफलता नहीं मिली। मैंने सागर साहब को कहा यह दृश्य कल कर लें क्योंकि मुझे इस समय याद नहीं आ रहा। वह हैरान हुए–भई, आधा सीन हो चुका है, यह अचानक क्या हो गया।?

फिर अरुण ने कहा इस तरह हो जाता, बाकी सीन का हिस्सा कल कर लें।

मुझे छुट्टी दे दी गयी। मैं जाकर लेट गया। मस्ती और आनन्द ज्यों का त्यों था। फिर नींद आ गयी और सुबह रोजमर्रा की तरह उठा। बात आयी गयी हो गयी।

दूसरी बार बिल्कुल इसी तरह तब हुआ जब हम अमरीका के एक शहर में रामायण के कुछ दृश्य लोगों के सामने स्टेज पर पेश कर रहे थे। मैं स्टेज पर हमेशा जो दृश्य करता था रावण के साथ, उसकी तैयारी करके स्टेज के पीछे दूसरे कलाकारों के साथ खड़ा था कि वैसे ही स्डूडियो वाला आनन्दमयी व मस्ती वाला आलम हो गया। मैं अपना दृश्य भूल गया। मैंने अरुण गोविल से कहा–मुझे मेरे सीन की शुरुआत बताओ। उसे केवल उसके साथ करने वाले दृश्य का पता था। रावण वाले दृश्य का कुछ पता नहीं था। रावण जी पहले ही स्टेज पर पहुँच गये थे। ऐसी हालत में मेरी स्टेज पर जाने की बारी आ गयी। मैं स्टेज पर पहुँच गया। दृश्य रावण से सवाल-जवाब करने का था। ना याद होते हुए भी मैं रावण के सवालों के जवाब देता गया। लोग बहुत खुश हुए, तालियां बजी। किसी को भी पता नहीं लगा था कि मैंने जो दृश्य तय किया था, उसके अलावा ही पेश किया है।

स्टेज से वापस आकर मैंने इस हैरत के बारे में अरुण को बताया। वह भी हैरान हुआ। उस दिन मस्ती-खुमारी होटल पहुँचने के समय तक रही थी।

इन दोनों वाकयों के आलवा मैंने इस तरह कभी महसूस नहीं किया। इसकी बात चार दोस्तों से की, उन्होंने कहा–इस तरह स्मरण शक्ति चली जाती है और वापस भी आ जाती है। यह थोड़ी देर के लिए होता है। मैंने कहा भई, मेरे साथ

यह कौतुक दोनों बार तब हुआ जब मैंने हनुमान जी की पोशाक पहनी हुई थी। आगे-पीछे तो कभी नहीं हुआ। खैर, उसकी वही जाने, आदमी तो उसके हाथ की कठपुतली है।

शूटिंग के दौरान खाने-पीने का परहेज किया जाता था। कई कलाकार दुखी भी थे कि तपस्वियों वाले तौर-तरीकों से रहना पड़ता था। पर जब लोगों की वाहवाही मिलती तो खुश भी बहुत होते थे। खानपान का परहेज पहले ठीक, पर कुछ समय के बाद तो केवल पोशाक पहनने तक ही रह गया था। उसके बाद कइयों ने खा-पीकर दंगे-फसाद भी किये। इन्सान भी एक अजीब चीज है, मर्यादा में तो एकदम सही रहता है, पर जब यह समझता है कि मर्यादा उस पर लागू नहीं है तो उसमें सोया हुआ या कह लो दबा हुआ पशु उजागर हो उठता है और फिर वह इन्सानियत की ऐसी-तैसी कर देता है।

श्रीराम तो मर्यादा पुरुषोत्तम थे। उनकी मर्यादा प्रणाली हम हर साल स्टेजों पर प्रदर्शित करके बताते हैं। रामायण सीरियल का भी यही मतलब है। लोगों को यह मर्यादा वाली बातें बहुत अच्छी लगती हैं, पर इन्हें अपनाने को कब तैयार होंगे, यह तो राम ही जाने। मेरे ख्याल में रामायण टी.वी. सीरियल ने लोगों के दिलों में दया और त्याग की भावनाएं उजागर की तथा पशुपन को पीछे धकियाया है। जय श्रीराम।

देश के नवयुवकों के लिए

मेरी आज तक की जिन्दगी को पढ़कर, मेरे प्रशंसकों ने मेरे बारे में जो भी राय कायम करनी होगी, कर ली होगी। इससे आगे चलकर मैं कैसा इन्सान बनूँगा, यह तो मुझे भी नहीं पता। ज्योतिषी और पंडित भविष्यवाणियां करते हैं, पर मैं इन पर यकीन नहीं रखता। चतुर इन्सान साधारण आदमियों के दिमाग पर असर डालने में कामयाब हो जाता है, और होता रहेगा। जरूरत है अपने भले-बुरे को आप ही विचारने की।

सिर्फ हमारे देश में ही नहीं बल्कि हर देश में लोग अफवाहों का शिकार होते हैं। प्रसिद्ध व्यक्तियों से जुड़ी अफवाहें भी आम आदमी के लिए कई बार दिल तोड़ने वाली बनी रहती हैं। क्योंकि आम आदमी सोच भी नहीं सकता कि वह इस तरह का भी बन सकता है। मिसाल के तौर पर पहलवान किकर सिंह के नाम के साथ जुड़ी एक मशहूर अफवाह आपको बताता हूँ। कहते हैं–

किकर सिंह अपने गाँव घनीएकियाँ से किसी दूसरे गाँव कुश्ती लड़ने जा रहा था। कुश्ती वाली जगह से थोड़ी दूर, एक कुएँ पर उसने व्यायाम करने के लिए लंगोट पहना तो एक दुबला-पतला आदमी पास आकर कहने लगा पहलवान, मुझे थोड़ा अभ्यास ही करा दे।

किकर सिंह ने उसे देखकर हँसते हुए कहा यह मरियल-सा आदमी मुझ जैसे रुस्तम पहलवान के साथ अभ्यास करना चाहता है और उसने कहा आ जा भई पहलवान, आज तक किसी ने तेरा अभ्यास नहीं कराया, मैं ही करवा देता हूँ।

दोनों में पकड़ हुई और दुबले आदमी ने किकर सिंह को नीचे गिरा लिया। बड़ा जोर लगाकर पहलवान नीचे से निकला तो उसने कहा–शाबाश! और पकड़कर किकर सिंह को नीचे गिरा लिया। मतलब कि जिस तरह बड़ा पहलवान, बच्चों को अभ्यास कराता है, उस तरह उसने किकर सिंह को अभ्यास करवाया। दो तीन

बार किकर सिंह उसके नीचे से निकल आया तो उसने किकर सिंह को थपथपाते हुए कहा—जा , दुनिया में तेरा कन्धा कोई नहीं लगा सकेगा। इसपर किकर सिंह ने कहा—मैं तो मारे शर्म के किसी को मुँह दिखाने लायक भी नहीं रहा। अब मैं जाकर कुश्ती लड़ता भी अच्छा नहीं लगूँगा क्योंकि तुम जैसे दुबले-पतले ने ही मेर मत्त मार ली। मेरे बच्चों की तरह अभ्यास करा दिये...तो उस दुबले-पतले व्यक्ति ने अपना शरीर बढ़ाया और एक देव का रूप धारण कर लिया। किकर सिंह डर गया, पर उस देव ने किकर सिंह को सदा जीतने का आशीर्वाद दिया और चलता बना। इसीलिए किकर सिंह पहलवान सबसे तगड़ा था।

मैं समझता हूँ यह दन्त कथा आने वाले नौजवान पहलवानों के लिए हानिकारक है क्योंकि वह यह समझेंगे कि किकर सिंह लंगोट का जति, हड़तोड़ मेहनत करने वाला पहलवान था जिसने बाकायदा व्यायाम और अभ्यास करके पहलवानी की और जीत हासिल की। जो भी किकर सिंह की तरह हड़तोड़ मेहनत करेगा, वह उससे भी तगड़ा पलवान बन सकता है। मैं समझता हूँ कि एक अच्छी बात होगी।

अफवाहें धीरे-धीरे कैसे जोर पकड़ती हैं, इस बारे में मैं आपको आप बीती सुनाता हूँ—

1956 की गर्मियों में मैं और अजीत बाजपुर मेरे चाचाओं को मिलने गये। उन्होंने वहां जमीन ली हुई थी। कुछ दिन वहाँ रहकर हम दो सप्ताह के लिए नैनीताल चले गये। गमियां काटने के लिए नैनीताल बहुत आदमी पहुँचे हुए थे। हम दो सप्ताह बाद बाजपुर आये तो चाचाओं के पास अन्य पड़ोसी भी इकट्ठे हो गये और पूछने लगे—नैनीताल के रास्ते में क्या बीती?

हमने कहा रास्ते में अचम्भेवाली कोई बात नहीं हुई। उन्होंने किसी हिन्दी अखबार का नाम लिया और कहने लगे—उसमें छपा था कि पहलवान दारासिंह नैनीताल जा रहा था। उसने देखा कि रास्ते में बहुत बसें, कारें और ट्रक खड़े हैं। भारी ट्रेफिक जाम था। पूछने पर पता लगा कि रास्ते में एक ट्रक उलट गया है इसलिए ट्रेफिक जाम है। अब तो क्रेन ही आकर इसे हटाएगी तो रास्ता खुलेगा। बड़ी हुहाई मची देखकर पहलवान गया। उसने ट्रक के इंजन को हाथ लगाया और ट्रक उठाकर एक तरफ रख दिया तब कही आवाजाही शुरू हुईं।

इस इफवाह को सुनकर मैं बड़ा हैरान हुआ और सोचने लगा—कि इस अफवाह का जन्म कैसे हुआ होगा, जिसे अखबार ने छाप दिया। फिर मुझे नैनीताल का एक वाकया याद आया। बाजार में घूमते हुए हमने कुछ लड़कों को जोर आजमाने

वाली मशीन पर गुत्थम गुत्था होते देखा। हम वहां ठहर गये। उन्होंने मुझे पहचान लिया और फरमाइश की कि मैं भी मशीन के हेंडिल को पकड़कर खींचू ताकि इसकी घण्टी बज जाए। उनकी खुशी के लिए मैंने मशीन के हंडिल को खींचा तो उसका स्प्रिंग टूट गया और मशीन जमीन पर जा गिरी।

बाजार में मुझे देखने के लिए बहुत भीड़ हो गयी थी। सभी ने स्प्रिग टूटने और मशीन गिरने की खुशी में तालियां बजायी, पर मशीन वाला कहने लगा मेरा तो बहुत नुकसान हो गया। मैंने मशीन को उठाकर खड़ा किया। मशीन का कुछ नहीं बिगड़ा था। मैं अपने रास्ते और लोग मेरे बारे में बातें करते हुए अपने रास्ते चल दिये। मैंने अनुमान लगाया कि बात जरूर इस मशीन से चली होगी जो नैनीताल से हल्द्वानी तक पहुँचते-पहुँचते इंजन और ट्रक बन गयी। फिर किसी चतुर आदमी ने इसमें इजाफा कर दिया होगा रास्ता रुकने का, वरना पहलवान का सिर फिरा था कि वह इंजन उठाता फिरता, आखिर कोई कारण होना चाहिए। मैंने बाजपुर वालों को यह सारी बात सुनायी तो वह भी हैरान रह गये कि अखबार में लिखी बातें भी अफवाहें हो कसती हैं।

मैं जो जरूरी बात लिखना चाहता हूँ वह है पहलवान की खुराक के बारे में अफवाहें! बहुत सारे बच्चे पहलवानी करने का ख्याल इसलिए छोड़ देते हैं कि इनती खुराक कैसे खाएँगे या कहाँ से खाएँगे। खुराक के बारे में कुछ पहलवान जानबूझकर झूठ बोल देते हैं। पहले जमाने में पहलवानों की खुराक राजा-महाराजाओं की तरफ से आती थी। उन्हें पूछा जाता था कि आपकी खुराक में क्या-क्या चीज शामिल है ताकि उस हिसाब से उनकी रसद पहुँचाई जाये या रसद के लिए पैसा दिया जाए। सुना है कि गामा और इमाम बख्श पहलवान की रोजाना खुराक में कुछ सोना भी शामिल था। पहलवान ज्यादा रसद के पैसे लेने के लिए महाराज से झूठ बोल देते थे। साथ ही लोगों में भी ज्यादा खुराक वाले पहलवानों की चर्चा कुछ ज्यादा ही होती थी।

शायद इसीलिए किंगकांग की खुराक बढ़ा-चढ़ाकर लिखी जाती थी। शुरू-शुरू में कुश्तियों के ठेकेदार मेरी खुराक के बारे में बढ़ाचढ़ाकर खिलते थे, पर जब मैंने अपने बयानों में सच बोलना शुरू किया तो उन्होंने मेरी खुराक के बारे में लिखना बन्द कर दिया।

मैं सच इसलिए बता रहा हूँ कि अगर किसी गरीब लड़के का पहलवानी करने का मन हो तो वह खुराक की सोचकर मन छोटा न कर कि इतनी खुराक तो उसे मिलनी ही नहीं तो वह पहलवान कैसे बनेगा। शुरू में मुझे भी अपने लिए

खुराक मुहैया करने की दिक्कत थी, पर फिर साधन जुड़ते गये और गाड़ी लाइन पर आती गयी। हर आदमी को इतनी ही खुराक खानी चाहिए जितनी वह हज्म कर सके। किसी का हाज्मा ज्यादा और किसी का कम होता है, पर अन्तर थोड़ा ही होता है। यह नहीं होता कि एक जना तो सेरभर घी पचा जाए और दूसरा पाव भर भी न पचा सके। हां दोनों का स्वस्थ होना जरूरी है। एक पहलवान और औसत आदमी में इतना फर्क है जितना एक बैल और सांड में होता है। बैल को अच्छा पट्ठा और आटा वगैरा खाने को मिले तो वह सांड से शायद ही कमजोर निकले। फर्क केवल इतना ही रहेगा कि सांड बेफिक्र होता है और बैल को कामकाज का फिक्र। निश्चित आदमी चिन्ता वाले आदमी की तुलना में हमेशा तगड़ा होगा, खुराक चाहे दोनों की एक ही हो। खैर, मैं अपनी खुराक के बारे में लिख देता हूँ और यहाँ पर यह भी बता देता हूँ इससे कम खुराक खा-पीकर भी पहलवान बना जा सकता है। मेरी यह खुराक उस समय की है जब मेरे शरीर में पूरी ताकत आयी थी और मैं अच्छी पहलवानी करता था।

खाने का मीनू

एक दिन में मैं 100 ग्राम. शुद्ध घी, दो किलो दूध, 100 ग्रा. गिरी बादाम की ठंडाई, दो मुर्गे या 1/2 कि. बकरे का गोश्त, 100 ग्रा. आंवले का, गाजर का या सेब का मुरब्बा, 10 चाँदी के वर्क अगर मुरब्बा न मिले तो 200 ग्रा. कोई भी मौसमी फल। तीन या चार रोटियों दोनों समय। एक समय दाल-सब्जी के साथ और एक समय मुर्गा या गोश्त के साथ।

ऊपर खिले मुर्गे हों तो एक की तरी और एक का सूप, अगर गोश्त हो तो आधे की तरी और आधे की यखनी। इस खुराक का हफ्ते में एक नागा जरूरी है। अगर भूख बरदाश्त न हो सके तो केवल रोटियां सब्जी के साथ।

इस खुराक में अगर दो-चाद दिन बाधा आ जाए तो कोई चिन्ता की बात नहीं। पर जहां तक हो सके व्यायाम और खुराक में नागा न ही हो तो अच्छा है। यह खुराक हाजमे के अनुसार थोड़ी कम-ज्यादा हो सकती है, पर केवल ग्रामों में, ज्यादा फर्क नहीं हो सकता।

खुराक का मीनू जो मैंने बताया है, इसके साथ एक बात और ध्यान रखने योग्य है—वह है इन्सानी तासीर। किसी की तासीर कुदरती गरम होती है ओर किसी की ठण्डी। ठण्डी तासीर वाले को गर्म चीजों वाली खुराक खानी चाहिए। और गर्म तासरी वाले को ठण्डी चीजों वाली खुराक खानी चाहिए। खाने-पीने की चीजें इस

तरह की होती हैं—गर्म, ठण्डी और तर-गरम। तर-गरम, वस्तुएँ हर तासीर वाले के लिए ठीक हैं। अब आप पूछेंगे कि कौन-सी चीजें गर्म, कौन-सी ठण्डी और कौन-सी तर गर्म होती हैं। वैसे विस्तार से तो हकीम ही बता सकते हैं, पर आमतौर पर जो चीजें कड़वी होती हैं, गर्म होती हैं। जो खट्टी होती हैं, वे ठण्डी होती हैं और जो न कड़वी हों और न खट्टी, उनमें कई तर-गर्म और कई तर-ठण्डी होती हैं। जिस तरह बादाम-तर-गरम हैं और दूध तर-ठण्डा। दोनों को मिलाकर खुराक बनती है साँवी, थोड़ी काली मिर्च का मेल हो जाए तो तर-गर्म खुराक बन जाती है, जो अक्सर पहलवान ठण्डाई बनाकर पीते हैं उसमें दूध, बादाम, खाण्ड और मिर्च के पानी का इस्तेमाल होता है।

तन्दुरुस्ती के शौकीनों को अपनी तासीर का जरूर पता होना चाहिए ताकि उसी के अनुसार खुराक खाने का यत्न किया जा सके। आप सुबह उठते हो तो किसी दिन अपने आपको बड़ा हल्का-फुल्का और फुर्तीला महसूस करते हो तो किसी दिन ढीला-ढीला और बोझिल। कारण होता है दिनभर की खुराक। अगर खुराक ठण्डी चीजों वाली और तासीर भी ठण्डी तो शरीर ढीला-ढाला अगर खुराक गर्म और तासीर भी गर्म तो भी शरीर ढीला, पर अगर खुराक शरीर के अनुसार खायी जाए तो चुस्ती रहेगी। साँवी खुराक खाने का इल्म आदमी को जवानी में होता ही नहीं है और वही उम्र होती है जब शरीर की नींव मजबूत होती है। नींव की मजबूती से मुझे अपना बचपन याद आ गया।

हम दो भाई, एक बहन थे। मुझसे डेढ़ साल बाद बहन जन्मी और बेचारी स्वर्गवासी हो गयी। मैंने पहले तो माँ का दूध अपने हिस्से का पीया, जो उस जमाने में औरतों बच्चा होने के बाद विशेष खुराक खाकर बच्चे के लिए दूध पैदा करती थी, और दूसरा अपनी बहन के हिस्से का भी पिया। माता जी बताती थी कि दूध बन्द नहीं हुआ था और उसने बहन की जगह मुझे पिलाना शुरू कर दिया। फिर मुझे ऐसी आदत पड़ गयी कि मैं हटूँ ही नहीं। बाहर खेलते हुए को जब भूख लगती, घर आकर माँ की गोद में घुस जाया करता। आखिर मेरी आदत हटाने के लिए माँ को कालियों का इस्तेमाल करना पड़ा। तब जाकर माँ का दूध पीने की मेरी आदत हटी।

रंधावा मुझसे 5 साल बाद जनमा। नींव की मजबूती के लिए माँ के दूध जैसी कोई खुराक नहीं। अगर नींव मजबूत है तो मकान भी मजबूत। बुढ़ापे में ज्ञान हाथ आता है पर समय तब निकल चुका होता है। खैर, ज्ञान फिर भी ज्ञान है इसका लाभ इन्सान को हर उम्र में होता है। जो आदमी ज्यादा व्यायाम और

परिश्रम करता है, रोज व्यायाम करके शरीर का पसीना निकालता है उसकी तासीर ज्यादातर तर-गर्म ही रहती है। गर्मी के मौसम में पहलवान बीदाना -- एक तरह का बीज होता है। पानी में भिगोकर उस पानी को पीते हैं ताकि शरीर की गरमी दूर हो जाए। वैसे कोई आम आदमी जो व्यायाम नहीं करता, एक सप्ताह तक बीदाना पी ले तो नामर्द भी हो सकता है। तन्दुरुस्ती रखनी और पहलवानी करनी यह अलग-अलग कहां है। तन्दुरुस्ती तो रह सकती है खुराक के सही इस्तेमाल करने पर, लेकिन पहलवानी खुराक और परिश्रम दोनों का सही इस्तेमल चाहती है। अच्छी सेहत, लम्बी उम्र और वो भी निरोगी, बड़े भाग्य से मिलती है, पर अगर खयाल रखा जाए ते भाग्य भी हिम्मतवालों का साथ देता है। अच्छी सेहत के लिए जहां विशुद्ध खुराक की जरूरत है, वहीं परहेज व अच्छे चरित्र की बहुत जरूरत है। किसी भी नशीली चीज का इस्तेमाल ना करना सेहत के लिए अच्छी बात है। विशेष रूप से शराब, अफीम, सिगरेट, भंग और नशे की गोलियां सेहत के लिए अति हानिकारक हैं। अगर गुरुनानक देव जी के कहे पर अमल किया जाये तो यूँ कहना चाहिए -- सेहत खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात! नशा करके आदमी को घण्टे-दो घण्टे जो मजा आता है, वही मौज-मजा सेहतमन्द इन्सान को 24 घण्टे आता रहता है। अच्छी सेहत रखने के लिए एक बात और जरूरी है वह है बेफिक्री। बेफिक्र और हरफनमौला आदमी हमेशा तरक्की की तरफ बढ़ता है। बेफिक्र रहना है तो जहां तक हो सके सच बोलो, किसी की निन्दा न करो, कोई भी ऐसा काम न करो जिससे अन्तर्आत्मा को डर महसूस होता हो। नेकी कर कुएँ में डाल वाली कहावत पर अमल करने वाला इन्सान कभी दुखी नहीं हो सकता।

हम सब दुनिया का मौज-मेला देखने आए हुए हैं। हमारे बुजुर्ग इस दुनिया को हमारे लिए सुहावनी बनाकर गये हैं। इसका स्वाद स्वयं लीजिए और आने वालों के लिए इस दुनिया को बुजुर्गों से भी सुन्दर बनाकर छोड़ जाएं। यही जिन्दगी है और यही इसकी कहानी।

❑❑❑

DARA SINGH

(19.11.1928 - 12.7.2012)
Wrestler 1946 - 1983
Actor 1950 -2012
M.P. 2003 - 2009

AS WRESTLER (1946 - 1983)

- Won professional Indian Wrestling Championship in 1953.
- **RUSTOM-E-HIND** in 1954. Commonwealth champion in 1959.
- **RUSTOM-E-PUNJAB** in 1966.
- **RUSTOM-E-JAMAA** (world champion) in 19 May 1968 - 1983 (15 years).
- He fights more than **500 wrestling without defeat**.

AS AN ACTOR (1950-2012)

- Work in 130 films (as actor 118 films, as producer 3 films, as director 9 films).
- **Best actor award** for **Jagga Film** by **Govt. of India**, which was presented by **Prime Minister Smt. Indira Gandhi.**
- Famous character as **Hanuman** in epic **Ramayana**.
- He was called **First HE-MAN** of indian cinema.
- In 1964 - 1965, Dara Singh's films was on box office more than 24 cinemas in Mumbai. It was a record, one of news paper published that, its happened only with me in history of world's cinema.

AS POLITICIAN (2003-2009)

- **First sports person** to be nominated as **Member of Parliament** (Rajya Sabha) since Aug. 2003 - 2009.
- Member of committee on **Human Resource Developments** since feb. 2004 - 2006.

- **Member of Consultative Committee** for the **Ministry of Youth** affairs and sports since Aug. 2004 onward.
- Member of committee on **Information Technology** since 2006 onward.
- Member of consultative committee for the **Ministry of Information and Broadcasting**.

PRESIDENT OF :

- **All India Jat Mahasabha** since 1997 onward.
- **Mumbai Jat Mahasabha** since 2005 onward.
- **Cine Artist Association** since 2005.

AS SOCIAL WORKER :

- In 1960, he helps to built **Nehru Stadium in Guwahati** by collection of Rs. 110000/- through out his wrestling events.
- He constructed a stadium in village Dharmu Chakh district Amritser (Punjab) by name of **Shaeed Bhagat Singh Stadium**.
- He did **charity for motivate of Indian soldiers** during second war with Pakistan in 1965, to provide rs.23000/- chque to honourable **Defence Minister of India Sardaar Swarn Singh Ji**. He motivates soldiers like this till 1969 and onward.
- He did charity and serve physically, socially, financially till he alive.